तन्त्र शक्ति

TANTRA SHAKTI

दुर्लभ तन्त्र एवं उनके व्यावहारिक
प्रयोगों का अनूठा संग्रह

तन्त्र-शक्ति
[TANTRA-SHAKTI]

लेखक
डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी
एम. ए. पी-एच. डी., डी. लिट्
साहित्य-सांख्य-योग-दर्शनाचार्य
(मन्त्र-शक्ति, यन्त्र-शक्ति, महामृत्युञ्जय-साधना और सिद्धि आदि)

रंजन पब्लिकेशन्स
१६, अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-११०००२

प्रकाशक :
रंजन पब्लिकेशन्स
१६, अन्सारी रोड, नई दिल्ली-२

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

संशोधित संस्करण : १९८५

RANJAN
PUBLICATIONS
Price 20/-

मुद्रक :
अंकित प्रिंटिंग प्रेस
रोहतासनगर, दिल्ली-३२

एक दृष्टि में

* मानव-जीवन की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं की पूर्ति के अनेक साधनों में 'तन्त्र' सरल और सुगम साधन है।
* यह भ्रम सर्वथा निर्मूल है कि तन्त्र केवल भूल-भूलैया अथवा मन बहलाने का नाम है।
* तन्त्र का विशाल प्राचीन साहित्य इसकी वैज्ञानिक सत्यता का जीता-जागता प्रमाण है।
* आधुनिक विज्ञान और तन्त्र में बहुत समानता होते हुए भी तन्त्र में स्थायित्व है, सत्य है और कल्याण है।
* तन्त्र-विधान का शास्त्रीय परिचय और विधियों का सर्वांगीण ज्ञान साधना को सफल बनाकर सिद्धि तक पहुँचाता है।
* लोक-कल्याण और आत्म-कल्याण की कामना से किये गये तान्त्रिक कर्म इस लोक और परलोक दोनों में लाभदायी होते हैं।
* नित्यकर्म, संक्षिप्त हवन विधि, शास्त्रीय गणपति और गायत्री तन्त्र के अभिनव-प्रयोग आपको कष्टों से बचाने में सहायक होंगे।
* वनस्पति-तन्त्र में सहदेवी, श्वेतार्क, निर्गुण्डी, रक्तगुंजा, बरगद के कल्प, बन्दे के प्रयोग, विष-निवारण तथा ग्रह-पीड़ाओं से बचने के औषध प्रयोग तथा स्नान-विधि का शास्त्रीय निर्देशन इसमें पहली बार ही दिये गये हैं।
* एकाक्षि-नारिकेल-कल्प, यन्त्र सहित, रत्न-धारण-तन्त्र, दक्षिणावर्त-शंख-कल्प और हाजरात के प्रयोग भी प्रामाणिक रूप से यहाँ प्रकाशित किये गये हैं।

यन्त्र मन्त्र तन्त्र-साधना की नई पुस्तकें

मंत्रसागर	३०.००
मोहिनी विद्या	१८.००
स्वरसिद्धि	१०.००
काली उपासना	१२.००
गायत्री तंत्र	५.००
तंत्र महासाधना	१२.००
अष्टसिद्धि	१५.००
शाक्तप्रमोद (संस्कृत) (तंत्र का दुर्लभ ग्रन्थ)	६०.००
बृहद् स्तोत्ररत्नाकर (स्तोत्रों का अनूठा ग्रन्थ)	२५.००
दुर्गार्चनपद्धति	४०.००
दुर्गा उपासना	१८.००
सौंदर्य-लहरी	७.००
उड्डीश तंत्र	५.००
दत्तात्रेय तंत्र	५.००
वाञ्छाकल्पलता	१०.००
बगलोपासन पद्धति	१०.००
शारदातिलक	५.००
रुद्रयामल तंत्र	५.००
महेश्वरी तंत्र	५.००
मंत्र और मातृकाओं का रहस्य	३५.००
मंत्र-सिद्धि का उपाय	५.००
तंत्रविद्या	१५.००
हिप्नोटिज्म (सम्मोहन विद्या)	८.००
कालीसिद्धि	१५.००
यंत्र महासिद्धि	१०.००
मंत्र से रोग निवारण	८.७५
योगसाधना, सिद्धि और ईश्वरी साक्षात्कार	२५.००
संकल्पसिद्धि	६.००
मन की अगाध शक्ति और स्वयं सूचना	१५.००
आपका भाग्यांक, अंगूठी	३.५०
संकट निवारक स्तोत्र व मंत्र	६.००
श्रीयंत्रशक्ति मंत्रशक्ति रहस्य	६.००
तंत्र साधनासार	१२.००
मंत्र-तंत्र-साधना	१५.००
मंत्र विद्या (सरल भाषा में)	६०.००

तन्त्र विद्या—(करणीदान सेठिया कृत) तंत्र का अत्यन्त सरल प्रामाणिक एवं व्यावहारिक ग्रंथ जिससे साधारण मनुष्य भी लाभ उठा सकें। सरल हिन्दी भाषा में। १००.००

रहस्यमयी तंत्र-मंत्र-यंत्र—आचार्य शुक्ल	२४.००
तंत्र सिद्धान्त और साधना—पं० देवदत्त शास्त्री	४०.००
योगिनीतंत्र भाषाटीका सहित	३५.००
यंत्रचिन्तामणि ,, ,,	१०.००
क्रियोड्डीशतंत्र ,, ,,	५.००
मंत्र महोदधि मूल संस्कृत एवं संस्कृत टीका	६०.००
सौभाग्य लक्ष्मी ,, ,,	५.००
चमत्कारिक तत्र-मंत्र और टोटके सरल हिन्दी में	१२.००
तंत्रसार (अभिनव गुप्त) संस्कृत का प्रामाणिक एवं दुर्लभ तंत्र ग्रंथ अब प्रकाश में।	७०.००
बगला तंत्र—भाषा टीका	५.००

दो शब्द

प्रत्येक मनुष्य अपने आपको सब ओर से सुखी और सम्पन्न देखना चाहता है। सुख की प्राप्ति के अनेक साधन हैं, उनमें तन्त्र-साधना भी एक है। इस साधना के द्वारा बड़ी-से बड़ी और छोटी-से-छोटी, जैसी भी समस्या हो उसका समाधान सहज प्राप्त किया जा सकता है।

भारतीय जीवन में आस्तिकता पूर्णरूप से घुली-मिली है और इसके फल-स्वरूप प्रत्येक भारतीय अपने धर्म और सम्प्रदाय के अनुरूप तान्त्रिक तत्त्वों से सम्बन्ध जोड़कर उससे लाभान्वित होता रहता है।

'तन्त्र-शक्ति' में प्रकृति से प्राप्त वस्तुओं के सहयोग से उनमें सोई हुई दैवी-शक्ति को जगाकर अपने अनुकूल बनाने और उनके द्वारा अपने इच्छित कार्यों को सफल बनाने की विधि बताई गई है। 'उचित समय, उचित देश एवं उचित पद्धति से किए गए कार्य ही वस्तुतः सफल होते हैं', इस बात को ध्यान में रखकर इस पुस्तक में शास्त्रीय विधियों को बहुत ही सरल भाषा में समझाया गया है। इसके अध्ययन से तन्त्र-सम्बन्धी भ्रम का सहज निवारण हो सकेगा।

हमारा लक्ष्य रहा है कि पाठकों को 'गागर में सागर' के रूप में अनुभूत साहित्य प्रस्तुत करना। इससे पूर्व प्रकाशित **'मन्त्र-शक्ति'** पुस्तक का सर्वत्र आदर हुआ है। इसी दृष्टि से यह द्वितीय पुस्तक **'तन्त्र-शक्ति'** आपके हाथों में आ रही है। विश्वास है, जिज्ञासु पाठकों के लिए यह अवश्य ही उपयोगी सिद्ध होगी। नई पुस्तक **'यन्त्र-शक्ति'** दो भागों में भी तैयार है।

थोड़े ही समय में यह पुस्तक तृतीय संस्करण को प्राप्त हो रही है, यह एक हर्ष का विषय है।

—लेखक

शुभता एवं सुख-शान्ति के लिए

भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठतम धरोहर

महामृत्युञ्जय
(साधना एवं सिद्धि)

लेखक—डा० रुद्रदेव त्रिपाठी
(एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०)

इस ग्रन्थ से आप प्राप्त करेंगे

- मानसिक शान्ति
- विरोधियों को निराशा
- सुरक्षा का अद्भुत कवच
- अचानक विपत्ति से बचाव
- इच्छा सिद्धि का अचूक उपाय
- रोग एवं क्लेश से मुक्ति
- आपसी मनमुटाव का निवारण
- बाधाएं दूर हों
- साहस को बढ़ावा
- दिशा-निर्देश

सरलता इतनी कि जिससे आप स्वयं कर सकें
विद्वान इसकी उच्चता एवं महत्त्व से परिचित हैं

मूल्य : ४० रुपये; डाक व्यय अलग

स्वप्न और शकुन (ज्योतिष)

—डॉ० गौरीशंकर कपूर

हमारे दैनिक जीवन में स्वप्नों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक व्यक्ति को स्वप्न अवश्य आते हैं, उन स्वप्नों से अपने भविष्य में घटने वाली घटनाओं का सरलता से अनुमान लगाया जा सकता है। इसी प्रकार शुभ या अशुभ शकुन जानने से प्रत्येक कार्य को सफलतापूर्वक करने में सहायता मिलती है।

प्रस्तुत पुस्तक में इन्हीं विषयों पर सरल एवं रोचक रूप से प्रकाश डाला गया है। इस अनुपम पुस्तक की सहायता से आप अपने भविष्य का सही-सही अनुमान लगा सकते हैं।

अपने विषय की सर्वप्रथम प्रामाणिक पुस्तक जिससे आपको नया उत्साह मिलेगा।

मूल्य : १०.००

विषय-सूची

परिचय विभाग

१. **आवश्यकता और आकांक्षा** ११-१८
तन्त्र शब्दार्थ और परिभाषा, तन्त्र और जनसाधारण का भ्रम वस्तुतः तन्त्र क्या है? पटल, पद्धति, कवच, सहस्रनाम और स्तोत्र।

२. **तन्त्रों का इतिहास और प्रमुख ग्रन्थ** १९-३४
वैष्णव-तन्त्र, शैव तन्त्र, शाक्त तन्त्रों में—रथक्रान्त, विष्णु-क्रान्त और अश्वक्रान्त के ग्रन्थ; गाणपत्य-तन्त्र, बौद्ध तन्त्र और जैन तन्त्र।

३. **आधुनिक विज्ञान और तन्त्र** ३५-४४
तन्त्रसाधना से पूर्व—एक निश्चय, शुद्ध आराधना, योग्यता, निरन्तर प्रयत्न, समान शक्ति, समान श्रद्धा, मनमाना मिश्रण नहीं, स्वसम्प्रदाय पर विश्वास और मर्यादा का पूर्ण पालन।

४. **तन्त्र में उपयोगी साधन और उनकी वैज्ञानिक उपयोगिता** ४५-४७
आध्यात्मिक तत्त्व, आधिदैविक तत्त्व और आधिभौतिक तत्त्व।

५. **तान्त्रिक उपकरण 'एक परिचय'** ४८-७०
आसन (६ प्रकार), गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, दीपदान के मुख्य कर्म और उनका विस्तृत परिचय, तान्त्रिक कर्म-परिचय-मारण-मोहनादि (६ प्रकार), अभिषेक कंकण-कवच, पट्ट, धारण योग्य वस्तुएँ, लेपन और अञ्जन, पिच्छक, कीलें और पताका आदि।

प्रयोग-विभाग

१. **नित्यकर्म-प्रयोग** ७३-८५
प्रातः स्मरण से लेकर सन्ध्या तक, हवनविधि, सर्वविधतन्त्र प्रयोगों से पूर्व करणीय साधना—दत्तात्रेय-मन्त्रजप एवं नर्वाण यन्त्र।

२. **शास्त्रीय तथा लौकिक तन्त्र** ८६-९५
सर्वसिद्धिप्रद गणपति-तर्पण, गायत्री मन्त्र के तान्त्रिक प्रयोग तथा हवन।

३. **विविध वनस्पति-तन्त्र** ९६-१०८
मूलिका ग्रहणविधि, सहदेवी कल्प, श्वेतार्क कल्प, निर्गुण्डी कल्प, रक्तगुंजा कल्प और वट (बरगद) का तान्त्रिक प्रयोग

४. तन्त्र में बन्दे के प्रयोग और सिद्धियाँ १०९-११४
बन्दे के तीन भेद, बन्दा लाने की विधि, आम, पीपल, पलाश थूहर, बेर, इमली, गूलर एवं अन्य विष-निवारक प्रयोग।

५. ग्रहपीड़ा-निवारण के लिये औषधियों के तन्त्र प्रयोग ११५-११८
नवग्रहों की औषधियाँ और प्रयोग, ग्रह शान्तिकारक स्नानविधि

६. एकाक्षि-नारिकेल-कल्प ११९-१२५
सम्पूर्ण पूजा-विधान, जप-मन्त्र अन्य प्रयोग और शान्ति।

७. रत्नधारण तन्त्र १२६-१३२
जन्म मास के अनुसार, जन्म तारीख के अनुसार, नवग्रहों के अनुसार धारण करने के रत्न। धारण-विधि, परीक्षा, अंगूठी और कंकण की विधि, कवच धारण विधि।

८. दक्षिणावर्त-शंखकल्प १३३-१४८
शंख महिमा, प्रमुख भेद, गणेश, देवी और विष्णु-शंख। जाति परीक्षा, कल्प (चार प्रकार के), पूजन तथा फल श्रुति।

९. तिलक-तन्त्र १४९-१५२
तेरह प्रकार के प्रयोग एवं साधन-विधि।

१०. पुष्प पत्र एवं फल तन्त्र १५३-१५४

११. धूप-तन्त्र (तीन प्रकार) १५५

१२. आकर्षण तन्त्र १५६-१५७
१. कार्तवीर्यार्जुन-प्रयोग २. धूमावती-प्रयोग

१३. कज्जल-तन्त्र १५८-१५९

१४. दीप-तन्त्र १६०-१६८

१५. हाजरात नखदर्पण तन्त्र १६९-१७१

१६. भूगर्भ निधि ज्ञान-तन्त्र १७२-१७६

लेखक की नवीन कृति

महामृत्युञ्जय साधना और सिद्धि

श्रेष्ठतम ग्रंथ, अवश्य मंगाइये मूल्य : ४०.००

१

परिचय-विभाग

१ | आवश्यकता और आकांक्षा

भगवान् कृष्ण ने गीता में अर्जुन को बोध देते हुए मानव की ईश्वर अथवा ईश्वरीय-सत्ता-सम्पन्न वस्तुओं के प्रति अभिरुचि के प्रमुख कारण दिखलाते हुए कहा है कि—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ ७-१६ ॥

अर्थात् भरतवंशियों में श्रेष्ठ, हे अर्जुन ! १. आर्त—संकट में पड़ा हुआ, २. जिज्ञासु—यथार्थ ज्ञान का इच्छुक, ३. अर्थार्थी—सांसारिक सुखों का अभिलाषी तथा ४. ज्ञानी—ऐसे चार प्रकार के उत्तम कर्मवाले लोग मेरा स्मरण करते हैं। यह कथन सभी के सम्बन्ध में लागू होता है। इन चार कारणों में अन्तिम को छोड़कर शेष तीन तो ऐसे हैं कि इन से कोई बचा हुआ नहीं है। कुछ केवल पीड़ित हैं, कुछ केवल जिज्ञासु हैं और कुछ केवल अर्थार्थी हैं; जबकि अधिकांश व्यक्ति तीनों कारणों से ग्रस्त हैं। ऐसे लोगों की आवश्यकताएँ कितनी अधिक होती हैं, यह किसी से छिपा नहीं है। ये आवश्यकताएँ मूलतः कष्टों से छुटकारा पाने, ज्ञातव्य को जानकर जिज्ञासा को शान्त करने तथा सांसारिक सुखों को प्राप्त करने के लिए निरन्तर बढ़ती रहती हैं। अतः आचार्यों ने इनकी पूर्ति के लिए भी अनेक मार्ग दिखाए हैं—जिनमें **'तन्त्र-साधना'** भी एक है।

तन्त्र-शक्ति से प्राचीन आचार्यों ने अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त

की थी और अन्य साधनाओं की अपेक्षा तन्त्र-साधना को सुलभ तथा सरल रूप में प्रस्तुत कर हमारे लिए वरदान ही सिद्ध किया था। यही कारण है कि सुपठित, अल्पपठित और अपठित, शहरी तथा ग्रामीण, पुरुष एवं स्त्री सभी तन्त्र द्वारा अपनी-अपनी आवश्यकता की पूर्ति का प्रयत्न करते हैं और पूर्ण सफलता प्राप्त कर लेते हैं। इसीलिए तन्त्र को सभी आवश्यकताओं का पूरक माना जाता है।

जब हम दुःखों से मुक्त होते हैं, तो हमारी आकांक्षाएँ कुलाँचें भरने लगती हैं। इच्छाएँ सीमाएँ लांघकर असीम बनती जाती हैं। साथ ही हम यह भी चाहते हैं कि इन सबकी पूर्ति में अधिक श्रम न उठाना पड़े। ठीक भी है, कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो घोर परिश्रम से साध्य क्रिया की अपेक्षा सरलता से साध्य क्रिया की ओर प्रवृत्त न हो? तन्त्र वस्तुतः एक ऐसी ही शक्ति है, जिसमें न अधिक कठिनाई है और न अधिक श्रम। थोड़ी-सी विधि और थोड़े-से प्रयास से यदि सिद्धि प्राप्त हो सकती है तो वह तन्त्र से ही।

अतः आवश्यकता और आकांक्षा की सिद्धि के लिए तन्त्र-शक्ति का सहारा ही एक सर्वसुलभ साधन है।

तन्त्र : शब्दार्थ और परिभाषा

'तन्त्र' शब्द के अर्थ बहुत विस्तृत हैं, उनमें से सिद्धान्त, शासन-प्रबन्ध, व्यवहार, नियम, वेद की एक शाखा, शिव-शक्ति आदि की पूजा और अभिचार आदि का विधान करने वाला शास्त्र, आगम, कर्मकाण्ड-पद्धति और अनेक उद्देश्यों का पूरक उपाय अथवा युक्ति प्रस्तुत विषय के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण हैं। वैसे यह शब्द 'तन्' और 'त्र' इन दो धातुओं से बना है, अतः 'विस्तारपूर्वक तत्त्व को अपने अधीन करना'—यह अर्थ व्याकरण की दृष्टि से स्पष्ट होता है, जबकि 'तत्' पद से प्रकृति और परमात्मा तथा 'त्र' से स्वाधीन बनाने के भाव को

ध्यान में रखकर 'तन्त्र' का अर्थ—देवताओं के पूजा आदि उपकरणों से प्रकृति और परमेश्वर को अपने अनुकूल बनाना होता है। साथ ही परमेश्वर की उपासना के लिए जो उपयोगी साधन हैं, वे भी 'तन्त्र' ही कहलाते हैं। इन्हीं सब अर्थों को ध्यान में रखकर शास्त्रों में तन्त्र की परिभाषा दी गई है—

सर्वेऽर्था येन तन्यन्ते त्रायन्ते च भयाज्जनान्।
इति तन्त्रस्य तन्त्रत्वं तन्त्रज्ञाः परिचक्षते॥

अर्थात्—जिसके द्वारा सभी मन्त्रार्थों-अनुष्ठानों का विस्तार-पूर्वक विचार ज्ञात हो तथा जिसके अनुसार कर्म करने पर लोगों की भय से रक्षा हो, वही 'तन्त्र' है। तन्त्र-शास्त्र के मर्मज्ञों का यही कथन है।

तन्त्र का दूसरा नाम 'आगम' है। अतः तन्त्र और आगम एक दूसरे के पर्यायवाची हैं। वैसे आगम के बारे में यह प्रसिद्ध है कि—

आगतं शिववक्त्रेभ्यो, गतं च गिरिजामुखे।
मतं च वासुदेवस्य, तत आगम उच्यते॥

तात्पर्य यह है कि जो शिवजी के मुखों से आया और पार्वतीजी के मुख में पहुँचा तथा भगवान् विष्णु ने अनुमोदित किया, वही आगम है। इस प्रकार आगमों या तन्त्रों के प्रथम प्रवक्ता भगवान् शिव हैं तथा उसमें सम्मति देने वाले विष्णु हैं, जबकि पार्वतीजी उसका श्रवण कर, जीवों पर कृपा करके उपदेश देने वाली हैं। अतः भोग और मोक्ष के उपायों को बताने वाला शास्त्र 'आगम' अथवा 'तन्त्र' कहलाता है, यह स्पष्ट हैं।

तन्त्र और जनसाधारण का भ्रम

तन्त्रों के बारे में अनेक भ्रम फैले हुए हैं। हम अशिक्षितों को

छोड़ दें, तब भी शिक्षित समाज तन्त्र की वास्तविक भावना से दूर, केवल परम्परा-मूलक धारणाओं के आधार पर इस भ्रम से नहीं छूट पाया है कि 'तन्त्र' का अर्थ है—जादू-टोना। अधिकांश जन सोचते हैं कि जैसे सड़क पर खेल करने वाला बाजीगर कुछ समय के लिए अपने करतब दिखलाकर लोगों को आश्चर्य में डाल देता है, उसी प्रकार 'तन्त्र' भी कुछ करतब दिखाने मात्र का शास्त्र होता होगा और जैसे बाजीगर की सिद्धि क्षणिक होती है, वैसे ही तान्त्रिक सिद्धि भी क्षणिक होगी।

इसके अतिरिक्त तन्त्रों में उत्तरकाल में कुछ ऐसी बातें भी प्रविष्ट हो गईं कि जिनमें पंचमकार—मद्य, मांस, मीन-मछली, मुद्रा और मैथुन का सेवन तथा शव-साधना, बलिदान आदि के निर्देश प्राप्त होते हैं। किन्तु खेद है कि इन बातों को तो लोगों ने देखा, पर इसके साथ ही तन्त्रों की 'गोपनीयता' की ओर उनका ध्यान नहीं गया। निश्चित ही गोपनीयता के इस रहस्य की पृष्ठभूमि में ये लाक्षणिक शब्द प्रयुक्त हुए हैं। इन सब निर्देशों का आध्यात्मिक अर्थ है, जिसे शास्त्रों से तथा गुरु-परम्परा से ही जाना जा सकता है। वाममार्ग या वामाचार का अर्थ भी इसी प्रकार संकेत से सम्बद्ध है; इसमें जो बात सामान्य समाज समझता है, वह कदापि नहीं है।

एक यह भी कारण इस शास्त्र के प्रति दुर्भाव रखने का है कि मध्यकाल में जब इस देश में बौद्धों के हीनयान का प्रचार बलशाली था तथा विदेशी आक्रमणों से त्रस्त जनता कुछ करने में अपने-आपको अशक्त पाकर ऐसे मार्गों का अवलम्बन ले रही थी, तब हमारे सन्त-कवियों ने स्वयं तन्त्र-साधना के बल पर ही लोगों को 'भक्ति' की ओर प्रेरित किया, जो आत्मशान्ति और आत्मकल्याण का एक सुगम उपाय था। ऐसे समय में कुछ प्रासंगिक रूप में तन्त्रों की निन्दा भी हुई, जो बाद में हीन-दृष्टि का कारण बनी।

अस्तु, यह नितान्त सत्य है कि 'तन्त्रों' की उदात्त भावना एवं विशुद्ध आचार-पद्धति के वास्तविक ज्ञान के अभाव से ही लोगों में इस शास्त्र के प्रति घृणा उपजी है और कतिपय स्वार्थी लोग तुच्छ क्रियाओं एवं आडम्बरों के द्वारा जनसाधारण को तन्त्र के नाम पर जो ठग लेते हैं, वह भी इसमें हेतु है। अतः इस साहित्य का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किए बिना घृणा करना भारी भूल है।

वस्तुतः 'तन्त्र' क्या है ?

जैसा कि हमने ऊपर तन्त्र के शब्दार्थ में दिखलाया है कि '**यह एक स्वतन्त्र शास्त्र है, जो पूजा और आचार-पद्धति का परिचय देते हुए इच्छित तत्वों को अपने अधीन बनाने का मार्ग दिखलाता है।**' इस प्रकार यह '**साधना-शास्त्र**' है। इसमें साधना के अनेक प्रकार दिखलाए गए हैं, जिनमें देवताओं के स्वरूप, गुण, कर्म आदि के चिन्तन की प्रक्रिया बतलाते हुए '**पटल, पद्धति, कवच, सहस्रनाम तथा स्तोत्र**'—इन पाँच अंगों वाली पूजा का विधान किया गया है। इन अंगों का विस्तार से परिचय इस प्रकार है :—

(क) **पटल**—इसमें मुख्यरूप से जिस देवता का पटल होता है, उसका महत्त्व, इच्छित कार्य की शीघ्र सिद्धि के लिए जप, होम का सूचन तथा उसमें उपयोगी सामग्रो आदि का निर्देश होता है। साथ ही यदि मन्त्र शापित है, तो उसका शापोद्धार भी दिखलाया जाता है।

(ख) **पद्धति**—इसमें साधना के लिए शास्त्रीय विधि का क्रमशः निर्देश होता है, जिसमें प्रातः स्नान से लेकर पूजा और जप-समाप्ति तक के मन्त्र तथा उनके विनियोग आदि का सांगोपांग वर्णन होता है। इस तरह नित्य पूजा और नैमित्तिक पूजा दोनों प्रकारों का प्रयोग-विधान तथा काम्य-कर्मों का संक्षिप्त सूचन इसमें सरलता से प्राप्त हो जाता है।

(ग) **कवच**—प्रत्येक देवता की उपासना में उनके नामों के द्वारा उनका अपने शरीर में निवास तथा रक्षा की प्रार्थना करते हुए जो न्यास किए जाते हैं, वे ही कवच-रूप में वर्णित होते हैं। जब ये 'कवच' न्यास और पाठ[1] द्वारा सिद्ध हो जाते हैं, तो साधक किसी भी रोगी पर इनके द्वारा झाड़ने-फूंकने की क्रिया करता है और उससे रोग शान्त हो जाते हैं। कवच का पाठ जप के पश्चात् होता है। भूर्जपत्र पर कवच का लेखन, पानी का अभिमन्त्रण, तिलकधारण, वलय, ताबीज तथा अन्य धारण-वस्तुओं को अभिमन्त्रित करने का कार्य भी इन्हीं से होता है।

(घ) **सहस्रनाम**—उपास्य देव के हजार नामों का संकलन इस स्तोत्र में रहता है। ये सहस्रनाम ही विविध प्रकार की पूजाओं में स्वतन्त्र पाठ के रूप में तथा हवन-कर्म में प्रयुक्त होते हैं। ये नाम अति रहस्यपूर्ण, देवताओं के गुण-कर्मों का आख्यान करने वाले, मन्त्रमय तक सिद्ध मन्त्र-रूप होते हैं। अतः इनका भी स्वतन्त्र अनुष्ठान होता है।[2]

(ङ) **स्तोत्र**—आराध्य देव की स्तुति का संग्रह ही स्तोत्र कहलाता है। प्रधान रूप से स्तोत्रों में गुण-गान एवं प्रार्थनाएँ रहती हैं; किन्तु कुछ सिद्धस्तोत्रों में मन्त्र-प्रयोग, स्वर्ण आदि बनाने की विधि, यन्त्र बनाने का विधान, औषधि-प्रयोग आदि भी गुप्त संकेतों द्वारा बताए जाते हैं। तत्त्व, पञ्जर, उपनिषद् आदि भी इसी के भेद-प्रभेद हैं। सरस साहित्यिक शैली में रचित स्तोत्रों की संख्या अपार है।

इन पाँच अंगों से पूर्ण शास्त्र '**तन्त्रशास्त्र**' कहलाता है। कलियुग में तन्त्रशास्त्रों के अनुसार की जाने वाली साधना शीघ्र फलवती होती

---

१. ऐसे कवच-स्तोत्रों के पाठ और प्रयोग-विधि के लिए हमारी अन्य पुस्तक **'स्तोत्र-शक्ति'**, देखें।

२. सहस्रनाम के बारे में विस्तृत जानकारी के लिये देखें—
'सिद्धमहामृत्युञ्जय साधना'।

है। इसीलिए कहा गया है कि—

बिना ह्यागममार्गेण नास्ति सिद्धिः कलौ प्रिये।

इसी प्रकार '**योगिनी तन्त्र**' में तो यहाँ तक कहा गया है कि—

निर्वीर्याः श्रौतजातीया विषहीनोरगा इव।
सत्यादौ सफला आसन् कलौ ते मृतका इव॥
पाञ्चालिका यथा भित्तौ सर्वेन्द्रिय-समन्विताः।
अमूरशक्ताः कार्येषु तथान्ये मन्त्रराशयः॥
कलावन्योदितैर्मार्गे सिद्धिमिच्छति यो नरः।
तृषितो जाह्नवीतीरे कूपं खनति दुर्मतिः॥
कलौ तन्त्रोदिता मन्त्राः सिद्धास्तूर्णफलप्रदाः।
शस्ताः कर्मसु सर्वेषु जप-यज्ञ-क्रियादिषु॥

वैदिक मन्त्र विषरहित सर्पों के समान निर्वीर्य हो गए हैं। वे सतयुग, त्रेता और द्वापर में सफल थे, किन्तु अब कलियुग में मृतक के समान हैं। जिस प्रकार दीवार में बनी सर्व इन्द्रियों से युक्त पुतलियाँ अशक्त होती हैं, उसी प्रकार तन्त्र से अतिरिक्त मन्त्र-समुदाय अशक्त है। कलियुग में अन्य शास्त्रों द्वारा कथित मन्त्रों से जो सिद्धि चाहता है, वह अपनी प्यास बुझाने के लिए गंगा के पास रहकर भी दुर्बुद्धिवश कुँआ खोदना चाहता है। कलियुग में तन्त्रों में कहे गए मन्त्र सिद्ध हैं तथा शीघ्र सिद्धि देने वाले तथा जप, यज्ञ और क्रिया आदि में भी प्रशस्त हैं।

मत्स्यपुराण में कहा गया है कि—

विष्णुर्वरिष्ठो देवानां ह्रदानामुदधिर्यथा।
नदीनां च यथा गंगा पर्वतानां हिमालयः॥
तथा समस्तशास्त्राणां तन्त्रशास्त्रमनुत्तमम्॥
सर्वकामप्रदं पुण्यं तन्त्र वै वेदसम्मतम्॥

जैसे देवताओं में विष्णु, सरोवरों में समुद्र, नदियों में गंगा और पर्वतों में हिमालय श्रेष्ठ है, वैसे ही समस्त शास्त्रों में तन्त्र-शास्त्र सर्व-

श्रेष्ठ है। वह सर्व कामनाओं का देनेवाला, पुण्यमय और वेद-सम्मत है।

'महानिर्वाण-तन्त्र' में भी कहा गया है कि —

गृहस्थस्य क्रियाः सर्वा आगमोक्ताः कलौ शिवे।
नान्यमार्गैः क्रियासिद्धिः कदापि गृहमेधिनाम्॥

हे पार्वती! कलियुग में गृहस्थ केवल आगम-तन्त्र के अनुसार ही कार्य करेंगे। अन्य मार्गों से गृहस्थियों को कभी सिद्धि नहीं होगी।

यही कारण है कि उत्तरकाल में तन्त्रशास्त्र और उनके आधार पर होने वाले प्रयोगों पर श्रद्धापूर्वक विश्वास ही नहीं किया गया, अपितु स्वयं प्रयत्न करके सुख-सुविधाएँ भी उपलब्ध की गईं।

यह असत्य नहीं है कि जहाँ जल अधिक होता है, वहाँ कीचड़ भी जम जाता है; इसी प्रकार युगों से चले आए तान्त्रिक कर्मों में कुछ सामयिक तथा अन्यदेशीय क्रियाकलापों के प्रभाव से पञ्चमकारोपासना, मलिन प्रक्रियाएँ, हिंसक वृत्ति आदि भी बहुधा समाविष्ट हो गईं। इन्द्रिय-लोलुप लोगों ने अपने क्षणिक स्वार्थ को अपनाकर इन बातों को अबोध व्यक्तियों में पर्याप्त विस्तार दिया। फलतः उनका प्रवेश स्थायी हो गया। फिर भी जो महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं, वे नितान्त शुद्ध उपासना और अध्यात्म-तत्त्व पर ही आधारित हैं, जिनका संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर लेना भी इस सम्बन्ध में उपयोगी होगा।

'कुलार्णव-तन्त्र' में 'पञ्चमकार' के प्रयोग का निषेध करते हुए स्पष्ट कहा गया है कि—

मद्यपानेन मनुजो यदि सिद्धिं लभेत् वै।
मद्यपानरताः सर्वे सिद्धिं गच्छन्तु मानवाः॥
मांसभक्षणमात्रेण यदि पुण्या गतिर्भवेत्।
लोके मांसाशिनः सर्वे पुण्यभाजो भवन्ति हि॥

यदि मद्यपान करने से मनुष्य सिद्धि को प्राप्त करता हो, तो सभी शराबी सिद्ध बन जाएँगे। और यदि मांसभक्षण मात्र से अच्छी गति होती हो, तो सभी मांसभक्षी पुण्यात्मा क्यों नहीं बन जाते? आदि।

२ तन्त्रों का इतिहास और प्रमुख ग्रंथ

'तन्त्र' शब्द का अर्थ जितना विस्तृत है, उसका इतिहास भी उतना ही प्राचीन है। हमारे सर्वमान्य तथा प्राचीन ग्रन्थ वेद हैं, जिन्हें 'अपौरुषेय'—ईश्वर की वाणी कहा जाता है। सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर की जो वाणी सुनी गई थी, वही वेद है। वेद की चार संहिताएँ हैं—ऋग्, यजुः, साम और अथर्व। इन चारों वेदों के एक-एक उपवेद हैं। 'तन्त्र' अथर्ववेद का उपवेद है। अतः 'तन्त्र' भी वेदरूप ही है। वैसे अनेक गवेषकों का कथन है कि तन्त्र, वेद से भी प्राचीन है, क्योंकि बीजरूपात्मक ओंकार का जो सर्वप्रथम आविर्भाव हुआ, उसी से समस्त वाङ्मय का विकास हुआ है। ॐ तन्त्र का तत्व है। यदि हमारे जीवन से 'तन्त्र' निकाल दिया जाए, तो शेष क्या रहेगा ? आज जितनी भी पूजा, साधना, हवन, तर्पण, मार्जन आदि होते हैं, ये सभी तन्त्र के ही तो अंग हैं। **'महानिर्वाण-तन्त्र'** में कलियुग में तन्त्रोक्त विधान को ही सर्वश्रेष्ठ बतलाया गया है।

इस तरह अतिप्राचीन तथा अतिमहत्वपूर्ण इस साहित्य के ग्रन्थों के बारे में भी कुछ ज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक है। भारतीय वेद-वेदांग के अध्ययन से उपेक्षित सामान्य वर्ग के लिए दयालु आचार्यों ने विभिन्न सम्प्रदायों के उदय के साथ ही तन्त्रों के भी विभिन्न सम्प्रदाय विकसित किए और उनके अनुसार ही ग्रन्थों की रचना की, जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

तन्त्र-ग्रन्थ

तन्त्र-ग्रन्थों का प्रणयन सर्वप्रथम कब और कहाँ हुआ ?—यह प्रश्न भी आज तक अनुत्तरित ही है। कुछ विद्वानों का मत है कि सर्वप्रथम बंगाल में और साथ-ही-साथ काश्मीर में इसका आलेखन आरम्भ हुआ होगा। आज भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात् विद्वानों का यह दायित्व है कि इसके यत्र-तत्र बिखरे हुए साहित्य को संगृहीत करें तथा इसकी ग्रन्थ-सम्पदा को संकलित कर, विशृंखलित कड़ियों को जोड़ें।

उपलब्ध तन्त्रग्रन्थों में चार बातें प्रमुख हैं—(१) ज्ञान, (२) योग, (३) क्रिया तथा (४) चर्या। इनमें प्रथम ज्ञान-विभाग में दर्शन के साथ ही मन्त्रों के रहस्यात्मक प्रभाव का वर्णन किया गया है। यन्त्र और मन्त्र भी इसी में आ जाते हैं। योग-विभाग में समाधि और योग के अन्यान्य अंगों की चर्चा प्रमुख है तथा साथ ही यह भी दिखाया गया है कि योग के अभ्यास से अलौकिक सिद्धियों की प्राप्ति सहज ही हो जाती है। क्रिया-विभाग में मूर्ति-पूजा का विधान प्रमुख है। मूर्ति और मन्दिर का निर्माण तथा प्रतिष्ठा का विधान भी इसमें सम्मिलित है। चर्या-विभाग में उत्सव, व्रत एवं सामाजिक अनुष्ठानों का विवरण प्रस्तुत है। इस प्रकार तन्त्र-ग्रन्थों की विषय-गत व्यापकता दर्शनीय है। इतना ही नहीं, इन ग्रन्थों का दार्शनिक दृष्टि से अनुशीलन करने पर तीन प्रकार के विमर्श प्रतीत होते हैं—(१) द्वैत-विमर्श, (२) अद्वैत-विमर्श तथा (४) द्वैताद्वैत-विमर्श।

देवता-भेद से भी इसके अनेक भेद हैं, जिनमें बहुचर्चित हैं—(१) वैष्णवतन्त्र, (२) शैवतन्त्र, (३) शाक्ततन्त्र, (४) गाणपत्यतन्त्र, (५) बौद्धतन्त्र और (६) जैनतन्त्र आदि। अवान्तर भेदोपभेदों के कारण इनमें भी कई शाखा-प्रशाखाएँ बनी हुई हैं। व्यवहार में वैष्णवतन्त्र को 'संहिता' कहते हैं, शैवतन्त्र को 'आगम' कहा जाता है तथा शाक्त-

तन्त्र को 'तन्त्र' की संज्ञा दी गई है। इसीलिए लोक में 'तन्त्र' का अर्थ **'शाक्त आगमों की साधना पद्धति'** ऐसा प्रचलित है।

(१) **वैष्णव-तन्त्र**

इस तन्त्र में **'पाञ्चरात्र'** की प्रमुखता है। पांचरात्र संहिताओं की सूची के अनुसार इसके ग्रन्थों की संख्या २०० से अधिक है। इनमें कुछ ग्रन्थ प्रकाशित भी हो चुके हैं। इनकी रचना का काल पाँचवें शतक से सोलहवें शतक तक माना जाता है। इसमें नारदजी शिव से प्रश्न करते हैं तथा शिवजी उसका उत्तर देते हैं। ग्रन्थ के वर्ण्य विषयों में 'धर्म, दर्शन, वर्णाश्रम, अक्षरों की दार्शनिक अभिव्यक्ति, दीक्षावर्णन, मन्त्र, यन्त्र, चक्र, योग तथा युद्ध में विजय प्राप्त करानेवाले विधानों की प्रधानता है। इन सबका वर्णन दीक्षात्मक शैली में किया गया है। ईश्वरसंहिता, पौष्करसंहिता, तमसंहिता, सात्त्वतसंहिता, बृहद्‌भ्रम-संहिता, ज्ञानामृतसार आदि संहिताओं की रचना उपर्युक्त काल की प्रमुख देन है। ज्ञानामृतसारसंहिता **'नारदपंचरात्र'** के नाम से प्रकाशित है। इसमें कृष्ण और राधा के सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा है। सभी प्राणियों पर एकाधिपत्य प्राप्त करने के लिए पाँच दिन का अनुष्ठान करने से इसका नाम पाञ्चरात्र पड़ा है। इसमें भी आज अनेक सम्प्रदाय प्रचलित हैं; लोग दीक्षित होते हैं तथा पारम्परिक साधना द्वारा स्व-पर-कल्याण में व्यस्त रहते हैं।

(२) **शैव-तन्त्र**

शैवागम-साहित्य अति विस्तृत है, क्योंकि इनमें सिद्धान्त शैव, वीरशैव, जंगमशैव, रौद्र, पाशुपत, कापालिक, वाम, भैरव आदि अनेक अवान्तर भेद हैं। अद्वैतदृष्टि से शैवसम्प्रदाय में विक अथवा प्रत्यभिज्ञा और स्पन्द प्रभृति विभाग हैं। अद्वैतमत में भी शक्ति की प्रधानता मानने पर स्पन्द, महार्थ क्रम इत्यादि भेद प्राप्त होते हैं। १० शैवागम और

१८ रुद्रागम प्रसिद्ध हैं। यह भी कहा जाता है कि परमशिव की पाँच शक्तियाँ—चित्, आनन्द, ज्ञान, इच्छा और क्रिया हैं। इसीलिए उन्हें 'पञ्चवक्त्र' कहते हैं। उनके पांच मुखों के नाम ईशान, तत्पुरुष, सद्योजात, वामदेव और अघोर हैं। इन्हीं पाँच मुखों से निकली वाणियों के प्रस्तार-विस्तार से १० सात्त्विक आगम, १८ रौद्रागम तथा ६४ भैरवागमों की उत्पत्ति हुई है। इनमें भेदप्रधान अवस्था से १० सात्त्विक आगम, भेदाभेद प्रधानरूप से १८ रौद्रागम तथा अभेदप्रधान रूप से ६४ भैरवागमों का आविर्भाव हुआ है। '**सम्मोहन-तन्त्र**' में बाईस भिन्न-भिन्न आगमों की चर्चा है। इनमें चीनागम, कापालिक, अघोर, जैन तथा बौद्ध आदि आगमों की भी चर्चा है। इनमें पाशुपत, सिद्धान्ती और प्रत्यभिज्ञादर्शन प्रसिद्ध एवं प्रधान हैं। पाशुपत सम्प्रदाय की प्रसिद्धि किसी समय पश्चिम भारत में अधिक थी। सिद्धान्ती सम्प्रदाय का स्थान दक्षिण में है। प्रत्यभिज्ञा-दर्शन का केन्द्र काश्मीर है।

किसी समय भारतवर्ष में पाशुपत-संस्कृति का व्यापक विस्तार हुआ था। न्यायवार्तिककार '**उद्योतकर**' एवं न्यायभूषणकार '**भासर्वज्ञ**' पाशुपत थे। भासर्वज्ञ की '**गण-कारिका**' आकार में यद्यपि छोटी है तथापि यह पाशुपत-दर्शन के विशिष्ट ग्रन्थों में से एक है। यह '**पाशुपत-दर्शन**' 'पञ्चार्थवाद-दर्शन' तथा 'पञ्चार्थ लाकुलाम्नाय' से विख्यात था। प्राचीन 'पाशुपत सूत्रों' पर **राशिकर** का भाष्य था। वर्तमान में इस पर कौण्डिन्य-भाष्य का प्रकाशन दक्षिण से हुआ है। इसमें कुछ उपागम भी हैं, जो '**मृगेन्द्र**' और '**पुष्कर**' नाम ने प्रसिद्ध हैं। इन आगमों में 'सृष्टि, प्रलय, देवपूजा, मंत्रसाधन, पुरश्चरण, षट्कर्म-साधन और ध्यानयोग'—इन सात विषयों की प्रधानता रहती है। आगम-प्रामाण्य, शिव पुराण तथा आगम-पुराण में और भी अनेक तान्त्रिक सम्प्रदाय-भेद वर्णित हैं। वैष्णवागमों की अपेक्षा शैवागमों में पर्याप्त विस्तार पाया है तथा इसी में शाक्त शिद्धान्तों का सम्मिश्रण होने से अनेक धाराएँ फैल गईं। डॉ० प्रबोधचन्द्र बागची ने 'स्टडीज इन द तन्त्राज' में तरतमभाव से स्थित

तन्त्रा के तीन विभाग बतलाए हैं—(१) स्रोतो विभाग, (२) पीठ विभाग तथा (३) आम्नाय विभाग। इनमें प्रथम विभाग के तीन भेद हैं, यथा—(१) वाम, (२) दक्षिण तथा (३) सिद्धान्त। इन तीन प्रकार के शैवों की चर्चा 'अजितागम' की भूमिका में 'पूर्वकारणागम' के वचन से तथा 'नेत्रतन्त्र' के वचन से इस प्रकार मिलती है—

वामदक्षिण-सिद्धान्तास्त्रिविधं शुद्ध-शैवकम् ।
मूलावतारतन्त्रादि शास्त्रं यद्वामशैवकम् ॥
स्वच्छन्दादीनि तन्त्राणि दक्षिणं शैवमुच्यते ।
कामिकादीनि तन्त्राणि सिद्धान्ता इतिकीर्तिताः ॥२६।५६-६०॥

इस प्रकार (१) वामशैव, (२) दक्षिणशैव तथा (३) सिद्धान्त शैव ये संज्ञाएँ बन गईं। इधर 'सिद्धान्तशिखामणि' में इनका अधिक स्पष्टीकरण देते हुए एक 'मिश्रशैव' नामक प्रकार और बतलाया है—

शक्तिप्रधानं वामाख्यं दक्षिणं भैरवात्मकम् ।
सप्तमातृपरं मिश्रं सिद्धान्तं वेदसम्मतम् ॥५।११॥

वर्तमान समय में तन्त्रों के वाम और दक्षिण ये दो मार्ग मिलते हैं। इनमें वाम मार्ग का तात्पर्य पञ्चमकार से न होकर 'नित्याषोडशिकार्णव' के अनुसार 'वामावर्तेन पूजयेत्' (१।१७६) इस पर की गई 'सेतुबन्ध' टीका तथा 'सव्यापसव्यमार्गस्था' (श्लोक २२०) इस 'ललितासहस्रनाम' के 'सौभाग्य-भास्कर' व्याख्यान द्वारा प्रतिपादित पूजन का प्रकार विशेष है। इन शैवागमों के वक्ता, अनुवक्ता, श्रोता, श्लोक-संख्या तथा २०७ उपागमों की चर्चा पाण्डिचेरी से प्रकाशित 'रौरवागम' के प्रथम भाग में देखनी चाहिए। 'अजितागम' में भी इस विषय पर पर्याप्त विचार किया गया है। इस विषय के प्रधान ग्रन्थ—'मूलावतार तन्त्र', 'स्वच्छन्द-तन्त्र' और 'कामिक-तन्त्र' आदि हैं।

३. शाक्त-तन्त्र

तन्त्रों के पूर्वोक्त तीन विभागों में प्रथम स्रोतोविभाग शैवों का, द्वितीय पीठ विभाग भैरव तथा कौल-मार्गानुयायियों का और तृतीय आम्नाय विभाग शाक्तों का है। शाक्त तन्त्र का विस्तार पूर्वोक्त दोनों तन्त्रों की अपेक्षा और भी विस्तृत है। 'तन्त्र-सद्भाव' में तो यहाँ तक कहा गया है कि—

सर्वे वर्णनात्मका मन्त्रास्ते च शक्त्यात्मकाः प्रिये।
शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया सा च ज्ञेया शिवात्मिका॥

इसके अनुसार मातृका और वर्ण से निर्मित समस्त वाङ्मय ही शिवशक्त्यात्मक है। शक्ति के विभिन्न रूप और उपासना के विविध प्रकारों के कारण इसके साहित्य का परिमाण बताना नितान्त कठिन है। अतः हम केवल 'त्रिपुरसुन्दरी' की उपासना और उससे सम्बद्ध कतिपय ग्रन्थों की ही चर्चा करेंगे।

'सौन्दर्यलहरी'[1] के टीकाकार 'लक्ष्मीधर' ने त्रिपुरोपासना के तीन मतों की चर्चा की है—(१) कौलमत, (२) मिश्रमत और (३) समयिमत इनमें कौलमत के ६४ आगम **'नित्याषोडशिकार्णव'** में दिखाए गए हैं। जिनमें (१-५) महामाया, शम्बर, योगिनी, जालशम्बर तथा तत्त्व शम्बर ये पाँच तन्त्र (६-१३) स्वच्छन्द, क्रोध, उन्मत्त, उग्र, कपाली, झंकार, शेखर और विजय ये आठ भैरव के तन्त्र, (१४-२१) बहुरूपाष्टक शक्ति तन्त्राष्टक, (२२) ज्ञानार्णव हैं।

(२३-३०)—ब्रह्म, विष्णु रुद्र, जयद्रथ, स्कन्द, उमा, लक्ष्मी और गणेशयामल ये आठ यामल, (३१) चन्द्रज्ञान, (३२) मालिनीविद्या, (३३) महासम्मोहन, (३४) महोच्छुष्म तन्त्र, (३५-३६) वातुल और

१. श्री शंकराचार्य विरचित इस ग्रन्थ पर लगभग ४२ टीकाओं द्वारा पर्याप्त विवेचन हुआ है।

वातुलोत्तर, (३७) हृद्भेद तन्त्र, (३८) मातृभेद तन्त्र, (३९) गुह्य तन्त्र, (४०) कामिक, (४१) कलावाद, (४२) कलासार, (४३) कुब्जिका मत, (४४) मतोत्तर, (४५) वीणाख्य, (४६-४७) तोतल और त्रोतलोत्तर, (४८) पंचामृत, (४९) रूपभेद, (५०) भूतोड्डामर, (५१) कुलसार, (५२) कुलोड्डीश, (५३) कुल-चूड़ामणि, (५४) सर्वज्ञानोत्तर, (५५) महापिचुमत, (५६) महालक्ष्मीमत, (५७) सिद्धयोगीश्वरीमत, (५८-५९) कुरूपिकामत और रूपिकामत, (६०) सर्ववीरमत, (६१) विमला-मत, (६२) अरुणेश, (६३) मोदिनीश तथा (६४) विशुद्धेश्वर, इन तन्त्रों की गणना की गई है। मिश्रमतानुयायियों में चन्द्रकला, ज्योत्सनावती, कलानिधि, कुलार्णव, कुलेश्वरी, भुवनेश्वरी, बार्हस्पत्य और दुर्वासमत इन **आठ** आगमों की स्वीकृति है। समयिमतानुयायी शुभागमपंचक को मानते हैं, जिनमें वसिष्ठ, सनक, शुक, सनन्दन और सनत्कुमार इन **पाँच** मुनियों के द्वारा प्रोक्त संहिताएँ आती हैं।

कुछ तन्त्र ग्रन्थों को भू-मण्डल के क्रमशः १-रथक्रान्त २-विष्णुक्रान्त और ३-अश्वक्रान्त ऐसे तीन विभागों में विभक्त करके उनके अनुसार ही प्रयोग करने का संकेत किया है। इसके अनुसार ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं—

(३) रथक्रान्त तंत्र के ग्रंथ

(१) चिन्मय	(८) महानिर्वाण
(२) मत्स्यसूक्त	(९) भूतडामर
(३) महिषमर्दिनी	(१०) देवडामर
(४) मातृकोदय	(११) विजयचिन्तामणि
(५) हंसमहेश्वर	(१२) एकजटा
(६) मेरु	(१३) वासुदेवरहस्य
(७) महानीला	(१४) वृहद्गौतमीय

(१५) वर्णोद्धृति
(१६) छायानिल
(१७) वृहद्योनि
(१८) ब्रह्मज्ञान
(१९) गरुड
(२०) वर्णविलास
(२१) बालाविलास
(२२) पुरश्चरणचन्द्रिका
(२३) पुरश्चरणरसोल्लास
(२४) पंचदशी
(२५) पिच्छला
(२६) प्रपंचसार
(२७) परमेश्वर
(२८) नवरत्नेश्वर
(२९) नारदीय
(३०) नागार्जुन
(३१) योगसार
(३२) दक्षिणमूर्ति
(३३) योगस्वरोदय
(३४) यक्षिणीतन्त्र
(३५) स्वरोदय
(३६) ज्ञानभैरव
(३७) आकाशभैरव
(३८) राजराजेश्वरी
(३९) रेवती
(४०) सारस
(४१) इन्द्रजाल
(४२) कृकलासदीपक
(४३) कंकालमालिनी
(४४) कालोत्तम
(४५) यक्षधर्म
(४६) सरस्वती
(४७) शारदा
(४८) शक्तिसंगम
(४९) शक्तिकागमसर्वस्व
(५०) सम्मोहिनी
(५१) आचारसार
(५२) चीनासार
(५३) षडाम्नाय
(५४) करालभैरव
(५५) शोध
(५६) महालक्ष्मी
(५७) कैवल्य
(५८) कुलसद्भाव
(५९) सिद्धितद्धरी
(६०) कीर्तिसार
(६१) कालभैरव
(६२) उड्डामरेश्वर
(६३) महाकाल
(६४) भूतभैरव

(२) विष्णुक्रांत तंत्र के ग्रंथ

(१) सिद्धिश्वर
(२) काली
(३) कुलार्णव
(४) ज्ञानार्णव
(५) नील
(६) फेत्कारी
(७) देव्यागम
(८) उत्तरा
(९) श्रीक्रम
(१०) सिद्धियामल
(११) मत्स्यसूक्त
(१२) सिद्धसार
(१३) सिद्धिसारस्वत
(१४) वाराही
(१५) योगिनी
(१६) गणेशविमर्शिणी
(१७) नित्या
(१८) शिवागम
(१९) चामुण्डा
(२०) मुण्डमाला
(२१) हंसमहेश्वर
(२२) निरुत्तर
(२३) कुलप्रकाशक
(२४) देवीकल्प
(२५) गन्धर्व
(२६) क्रियासार
(२७) निबन्ध
(२८) स्वतन्त्र
(२९) सम्मोहन
(३०) तन्त्रराज
(३१) ललिता
(३२) राधा
(३३) मालिनी
(३४) रुद्रयामल
(३५) वृहत् श्रीक्रम
(३६) गवाक्ष
(३७) सुकुमुदिनी
(३८) विशुद्धेश्वर
(३९) मालिनीविजय
(४०) समयाचार
(४१) भैरवी
(४२) योगिनीहृदय
(४३) भैरव
(४४) सनत्कुमार
(४५) योनि
(४६) तन्त्रान्तर
(४७) नवरत्नेश्वर
(४८) कुलचूड़ामणि

(४९) भावचूड़ामणि
(५०) देवप्रकाश
(५१) कामाख्या
(५२) कामधेनु
(५३) कुमारी
(५४) भूतडामर
(५५) यामल
(५६) ब्रह्मयामल
(५७) विश्वसार
(५८) महाकाल
(५९) कुलोड्डीश
(६०) कुलामृत
(६१) कुब्जिका
(६२) यन्त्रचिन्तामणि
(६३) कालीविलास
(६४) मायातन्त्र

(३) अश्वक्रांत तंत्र के ग्रंथ

(१) भूतशुद्धि
(२) गुप्तदीक्षा
(३) वृहत्सार
(४) तत्त्वसार
(५) वर्णसार
(६) क्रियासार
(७) गुप्ततन्त्र
(८) गुप्तसार
(९) वृहत्तोडला
(१०) वृहन्निर्वाण
(११) वृहत्कंकालिनी
(१२) सिद्धातन्त्र
(१३) कालतन्त्र
(१४) शिवतन्त्र
(१५) सारात्सार
(१६) गौरीतन्त्र
(१७) योगतन्त्र
(१८) धर्मकतन्त्र
(१९) तत्त्वचिन्तामणि
(२०) बिन्दुतन्त्र
(२१) महायोगिनी
(२२) वृहद्योगिनी
(२३) शिवार्चन
(२४) सम्वर
(२५) शूलिनी
(२६) महामालिनी
(२७) मोक्ष
(२८) वृहन्मालिनी
(२९) महामोक्ष
(३०) वृहन्मोक्ष
(३१) गोपीतन्त्र
(३२) भूतलिपि

(३३) कामिनी	(४६) भूतेश्वर
(३४) मोहिनी	(५०) गायत्री
(३५) मोहन	(५१) विशुद्धेश्वर
(३६) समीरण	(५२) योगार्णव
(३७) कामकेशर	(५३) भैरण्डा
(३८) महावीर	(५४) मन्त्रचिन्तामणि
(३९) चूड़ामणि	(५५) यन्त्रचूड़ामणि
(४०) गुर्वर्चन	(५६) विद्युल्लता
(४१) गोप्य	(५७) भुवनेश्वरी
(४२) तीक्ष्ण	(५८) लीलावती
(४३) मंगला	(५९) वृहत्चीन
(४४) कामरत्न	(६०) कुरंज
(४५) गोपलीलामृत	(६१) जयराधामाधव
(४६) ब्रह्मानन्द	(६२) उज्जासक
(४७) चीन	(६३) धूमावती
(४८) महानिरुत्तर	(६४) शिवा

उपर्युक्त मतों एवं ग्रन्थों के विशदीकरण, प्रतिपादन और मार्ग निर्देशन की दृष्टि से अनेक आचार्यों ने तन्त्र-ग्रन्थों की रचना की है। परशुराम कल्पसूत्र, नित्योत्सव, वामकेश्वरतन्त्र, नित्याषोडशिकार्णव, शाक्तप्रमोद, शाक्तानन्दतरंगिणी, प्रपंचसार, तन्त्रालोक आदि सुप्रसिद्ध एवं संग्राह्य ग्रन्थ हैं। इनके अतिरिक्त कतिपय पूजापद्धतियाँ, स्तोत्र और उनके टीका-भाष्यादि भी पर्याप्त प्रकाश डालते हैं।

(४) गाणपत्यतन्त्र

गणपति की उपासना को लक्ष्य में रखकर रचे गए तन्त्र गाणपत्य

---

१. हमने षोडशावरणात्मक 'महात्रिपुरसुन्दरी', 'खड्गमाला' का प्रकाशन किया है, उसके साथ ही 'श्री विद्यादीपिका' है, वह भी द्रष्टव्य हैं।

तन्त्र में आते हैं। गणपति के गिरिगणपति, क्षिप्रगणपति, सिद्धिगणपति, नवनीत गणपति, शक्ति गणपति, उच्छिष्ट गणपति, एकाक्षरी गणपति आदि स्वरूपों की उपासना शाक्तसम्मत है। आम्नायभेद से **पूर्वाम्नाय** के **विरञ्चिगणपित; दक्षिणाम्नाय** के **लक्ष्मीगणपति, पश्चिमाम्नाय के विघ्नगणेश** आदि पूज्य हैं। इनके अतिरिक्त हरिद्रा, अर्क, दूर्वा, नवनीत आदि के गणपति और विविध काम्यकर्मों पर आधारित विविध आकृतिमूलक गणपति की उपासनाएँ होती हैं। गणेशपुराण इस विषय में संकेत करता है। वैसे जो तन्त्रशास्त्र के मिश्र ग्रन्थ हैं, उनमें तथा समस्त पूजा-पद्धतियों में गणेश की आराधना का विधान मिलता है। भारत के विभिन्न भागों में 'गणपत्यथर्वशीर्ष' का प्रयोग अत्यधिक प्रचलित है, जो दक्षिण-महाराष्ट्र के आचार्यों से प्रभावित है। प्रपञ्चसार, शारदातिलक, मन्त्रमहोदधि, मन्त्रमहार्णव आदि ग्रन्थों से इस विषय में विस्तृत ज्ञान उपलब्ध किया जा सकता है।

(५) बौद्धतन्त्र

भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के २८ वर्ष बाद सिंहल के मलय पर्वत पर पाँच सत्कुलों ने बैठकर तेईस प्रार्थनाएँ कीं। उस समय भगवान् बुद्ध ने स्वयं गुह्यपति वज्रपाणि के रूप में अवतार लेकर सभी तन्त्रों का उपदेश दिया। इन तन्त्रों को तृतीय सत्कुल राक्षस-सत्कुल ने सात सन्धियों की शक्ति से आकाशकोश में सुरक्षित कर दिया। तदनन्तर साहोर के सम्राट् 'जः' को स्वप्न हुआ और उन्होंने साधना की, जिसके फलस्वरूप वाराणसी से क्रियातन्त्र, सिंहल के वनभाग से अनुयोगतन्त्र, ज्वालामुखी के शिखर से चर्यायोगतन्त्र तथा उड्यानदेश से आदियोगतन्त्र के ग्रन्थ प्राप्त हुए। ये ग्रन्थ महा आचार्य आनन्दवज्र को प्राप्त हुए। तब उन्होंने इनका आलेखन किया। भारत में आचार्य शान्तरक्षित तथा आचार्य पद्मसम्भव बौद्धतन्त्रविद्या में परम निष्णात थे। इन्हीं आचार्यों ने तिब्बत में जाकर 'बसम्-यस्-अचिन्ता' महा-

विहार की स्थापना की तथा उसकी प्रतिष्ठा में क्षुद्र देवताओं द्वारा किए गए उपद्रवों का शमन किया। फलतः तिब्बत के अनेक तन्त्रग्रन्थों का वहाँ अनुवाद हुआ। वज्रयान और हीनयान नाम से इनकी दो शाखाएँ हैं। वज्रयान के पिटकों में विशुद्ध मुक्ति का सहज मार्ग है। इसीलिए यह हीनयान तथा सामान्य महायान से अधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है। महा आचार्य श्रीसिंह तथा महा आचार्य हुंकार ने विदेश से आए अनेक जिज्ञासुओं को भारत में विशुद्ध तन्त्र का ज्ञान दिया था तथा महाभिषेक किया था। तारा इस मत की उपास्या देवी है। अब कुछ ग्रन्थ संस्कृत में प्रकाशित भी हो चुके हैं। आचार्य पद्मसम्भव ने 'व्सम्-यस् मछिम्लफू' में महान् अष्ट साधनाओं के मण्डल द्वारा वहाँ के राजा और शिष्यों को अभिषिक्त कर प्रत्येक को एक-एक सिद्धि का भार दिया था। परिणामतः शिष्यों ने अपने-अपने कुल के अनुसार सिद्धियाँ प्राप्त कीं थीं। इस प्रकार बौद्ध तन्त्र साहित्य के ग्रन्थ भी प्रचुरमात्रा में प्राप्त होते हैं, जिनका अनुशीलन भारत में कुछ अंशों में प्रचलित है।

(६) जैनतन्त्र

जैनधर्म के आद्य तीर्थंकर ऋषभदेव ही जैनतन्त्र के प्रवर्तक माने जाते हैं। ऋषभदेव के पुत्र नमिनाथ को नागराज ने आकाशगामिनी विद्या दी थी। इसी प्रकार गन्धर्व और पन्नगों को भी नागराज ने ४८ हजार विद्याएँ दी थीं। इसका वर्णन वसुदेव-हिण्डी के चौथे लम्भक में प्राप्त होता है। विद्याओं के धारक विद्याधर होते हैं। दिगम्बर ग्रन्थों में ५०० महाविद्याओं तथा ७०० विद्याओं का वर्णन है। श्वेताम्बरों के ग्रन्थ समवायांग में स्पष्ट है कि विद्यानुवाद में १५ वस्तुएँ ली गइँ तथा जैनाचार्यों के ४ कुलों में एक विद्याधर कुल था। विद्याचारण मुनि और ऋद्धिवाले मनुष्यों में पूर्व चारण होते थे। लब्धि-तप द्वारा प्राप्त होती है। स्त्रीदेवताधिष्ठित विद्या जपादिसाध्य तथा

पुरुषदेवताधिष्ठित मन्त्र पाठसाध्य माने गए हैं।

वस्तुत: तन्त्र सम्प्रदाय का प्रवर्तन तेईसवें तीर्थंकर श्रीपार्श्वनाथ से अधिक पुष्ट रूप में हुआ है। निशीथसूत्र एवं कुछ अन्य आगमों में सर्वप्रथम नमस्कार मन्त्र और उसकी साधना पर विशेष बल दिया गया है सूरिमन्त्र एवं अन्य कतिपय विद्याओं का उल्लेख भी इन ग्रन्थों में है। **पञ्चमचरित्र, वसुदेवहिन्डी, त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित** आदि ग्रन्थों में विद्याओं का वर्णन है। उत्तरकाल के आचार्यों में श्री सिंहतिलक सूरि ने '**मन्त्रराजरहस्य**' और '**तन्त्रलीलावती**' का प्रणयन किया है। श्रीजिनप्रभसूरि को पद्मावती देवी के वर से मन्त्रतन्त्रादि का ज्ञान मिला, जिनका संग्रह '**रहस्यकल्पद्रुम**' नामक ग्रन्थ में हुआ। इस ग्रन्थ का कुछ अंश बीकानेर में नाहटाजी की लायब्रेरी में सुरक्षित है। श्री हलाचार्य का '**ज्वालिनीमत**' इस परम्परा का उत्तम ग्रन्थ है। इसमें (१) मन्त्री, (२) ग्रह, (३) मुद्रा, (४) मण्डल, (५) कटुतैल, (६) वश्ययन्त्र, (७) सुगन्ध, (८) स्नपनविधि, (९) नीराजन विधि और (१०) साधनाविधि नामक दस अधिकार हैं।

श्री सिद्धसेन दिवाकर, अकलंकदेव, जिनदत्तसूरि, मुनि गुणाकर, कुन्दकुन्दाचार्य, हेमचन्द्राचार्य, इन्द्रनन्दि आदि अनेक आचार्यों का जैन-तन्त्र साहित्य में महत्त्वपूर्ण योगदान है। अनेक मन्त्रगर्भ-स्तोत्र उवसग्गहर, भत्तिब्भर, नमिऊण, लघुशान्ति, भवतामर, कल्याण-मन्दिर आदि इस दिशा में उत्तम सहायक हैं। सिद्धचक्र और ऋषिमण्डल-यन्त्रों का प्रचार भी पर्याप्त हो रहा है। भैरवपद्मावती कल्प, सूरिमन्त्र कल्प, अर्जुनपताका, नमस्कार-यन्त्र यन्त्रचिन्तामणि आदि ग्रन्थों के अतिरिक्त एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'विद्यानुशासन' है। इस एक ही नाम के ग्रंथ की रचना विभिन्न आचार्यों ने की है, यथा इन्द्रनन्दि, मल्लिषेण, सुकुमार सेन तथा मतिसागर आदि। मल्लिषेण रचित 'विद्यानुशासन' ११वीं शती का एक उत्तम ग्रंथ है। इसमें २४ अधिकार तथा प्राय: ५ हजार पद्य हैं। इसकी विशेषता यह है कि तन्त्र-शास्त्र में ग्राह्य सभी विषयों

का यथावत् समाकलन इसमें किया गया है। पंच-नमस्कार एवं पार्श्व-नाथ की उपासना के अतिरिक्त अनेक देव-देवताओं की आराधना का भी समन्त्रक निर्देश है। जैनधर्म की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए मन्त्रव्याकरण और सन्तान-प्राप्ति आदि के विभिन्न प्रयोग इसके मौलिक विषय हैं। वन्ध्यादिदोषवारण, बालरोग-विज्ञान, गर्भस्थिति-काल के क्रमिक रक्षाप्रयोग, सर्पविज्ञान, विषविज्ञान, निधिगर्भ भू-परीक्षण आदि विषयों का एकत्र संकलन इस ग्रन्थ की महत्ता में चार चाँद लगाता है।

जैनाचार्यों ने यन्त्र-मन्त्रादि से युक्त एक विशिष्ट साधनमार्ग को भी 'तन्त्र' कहा है। महान् तन्त्रज्ञ 'नागार्जुन' एक राजकुमार थे, किन्तु उनकी माता नागकन्या थी। कहा जाता है कि एक बार एक राजकुमार शिकार खेलने के लिए आबू पर्वत पर गया और प्रसंगवश शिकार के पीछे भागते-भागते वह ऐसे क्षेत्र में पहुँच गया, जहाँ 'नागमती' नामक नागराज की पुत्री युवती कन्या के रूप में अपनी सखियों के साथ क्रीड़ा कर रही थी। राजकुमार उसे देखकर मुग्ध हो गया और राजकुमार पर नागमती। परस्पर आकर्षण से दोनों का प्रणय-सम्बन्ध हो गया और इसकी परिणति 'नागार्जुन' नामक पुत्र के रूप में हुई। माता ने पुत्र को अपनी जाति के अनुसार विविध औषधियों के गुण-दोषों से परिचित कराया और बाद में बड़ा होने पर वह एक महान् तान्त्रिक हुआ। इसने अपने द्वारा सिद्ध किए हुए तान्त्रिक प्रयोगों का संग्रह एक ग्रन्थ में किया था और उसे वह सदा अपनी काँख में ही रखता था। इसी के आधार पर उसका नाम 'कक्ष-पुटी' हो गया।

इस ग्रन्थ में सामान्य औषध प्रयोग तथा अन्यान्य मन्त्रों के साथ ही पारद (पारे) के प्रयोग, सुवर्णसिद्धि एवं अन्य रसायनसिद्धि के भी प्रयोग लिखे हुए थे।

नागार्जुन को बौद्ध, जैन और सनातन सम्प्रदाय में सभी ने अपने अपने मत का अनुयायी माना है। कुछ भी हो, जैन सम्प्रदाय में आज अनेक ग्रन्थ सुरक्षित प्राप्त होते हैं, जिनका तन्त्र की दृष्टि से बहुत महत्त्व है।

इसी परम्परा में छोटे-छोटे कल्प भी तन्त्र के ही अंग हैं, जिनमें किसी एक वस्तु-विशेष को लक्ष्य में रखकर अथवा किसी देवता-विशेष को ध्यान में रखकर प्रयोग-विधियों का संग्रह दिया गया है, जिनमें एकाक्षि नारियल, दक्षिणावर्त-शंख, एकमुखी रुद्राक्ष, सुवर्णसिद्धि, पारद-सिद्धि आदि से सम्बद्ध कल्पों का विशेष प्रचार है।[1]

इनके अतिरिक्त भी शाबर तन्त्र, डामर-तन्त्र, मुस्लिम-तन्त्र तथा लोकभाषात्मक तन्त्र प्रयोगों के ग्रन्थ यत्र-तत्र प्राप्त होते हैं, जिनका परिचय अन्यान्य ग्रन्थों से प्राप्त करना चाहिए।

इन तन्त्र-ग्रन्थों के इतिहास से इतना अवश्य स्पष्ट हो जाता है कि यह साहित्य एक महत्त्वपूर्ण स्थान को प्राप्त है तथा इसका विस्तार बहुत प्राचीनकाल से होता चला आया है। साथ ही यह भी ज्ञात हो जाता है कि इनके आधार पर लाखों नर-नारियों ने दुःखों से मुक्ति पाकर जीवन के कण्टकाकीर्ण मार्गों को सुगम बनाया है और सुख-सुविधाएँ उपलब्ध की हैं।

---

१. इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य है हमारा विशेष लेख **'जैन तन्त्र : : एक समीक्षात्मक सर्वेक्षण।'**

सन्मार्ग : तन्त्रविशेषांक वाराणसी, वर्ष ३४, अंक १८६, जुलाई १९७९ ई०

३ | आधुनिक विज्ञान और तन्त्र

प्रत्येक बुद्धि-सम्पन्न व्यक्ति के मन में सदैव एक यह तर्क उठता रहता है कि—"आज विज्ञान जितना विकसित हो गया है और हमारे जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, उसी तरह तन्त्र से भी पूर्ति सम्भव है क्या ?" अथवा "जब विज्ञान ने सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के उपकरण उपस्थित कर दिए हैं, फिर तन्त्र और उनकी साधनाओं से क्या लाभ है ?"

इन दोनों प्रश्नों का समाधान हम इस प्रकार कर सकते हैं— "विज्ञान जिन साधनों से हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, वे साधन क्रमशः एक-दूसरे के अधीन हैं, अर्थात् वे परापेक्षी हैं, उनका उपयोग स्वतन्त्र रूप से नहीं हो सकता, जबकि तन्त्र-साधना द्वारा स्वतन्त्र रूप से सिद्धि प्राप्त की जा सकती है। विज्ञान की सिद्धि कुछ समय तक ही लाभप्रद होती है, किन्तु तन्त्र द्वारा प्राप्त सिद्धि चिर-स्थायी हो सकती है। विज्ञान बाह्य रूप से सहयोगी बनता है, जबकि तन्त्र हमारे आन्तरिक मस्तिष्क को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करते हैं। इसलिए परतन्त्रता की अपेक्षा स्वतन्त्रता ही श्रेयस्कर है।

वैसे विज्ञान के लक्ष्य भौतिक कार्यों की उपलब्धि तक ही सीमित हैं, जबकि तन्त्र का उद्देश्य इस लोक की सुख-सुविधाओं की पूर्ति के साथ-साथ **जीव को शिवस्वरूप** बनाना भी है। जीव और शिव की व्याख्या **'कुलार्णव-तन्त्र'** में इस प्रकार दी गई है—

घृणा लज्जा भयं शंका, जुगुप्सा चेति पञ्चमी।
कुलं शीलं तथा जातिरष्टौ पाशाः प्रकीर्तिताः ॥
पाशबद्धो भवेज्जीवः पाशमुक्तः सदाशिवः।

अर्थात् घृणा, लज्जा, भय, शंका, जुगुप्सा-निन्दा, कुल, शील और जाति ये आठ पाश कहे गए हैं, इनसे जो बँधा हुआ है, वह जीव है। इन्हीं पाशों से छुड़ाकर (तन्त्र जीव को) सदाशिव बनाते हैं। इस तरह दोनों के उद्देश्यों में भी पर्याप्त अन्तर है और विज्ञान से तन्त्रों के उद्देश्य महान् हैं।

तन्त्रों की इस स्वतन्त्र वैज्ञानिकता के कारण ही प्रकृति की चेतन-अचेतन सभी वस्तुओं में आकर्षण-विकर्षण उत्पन्न कर, अपने अधीन बनाने के लिए कुछ दैवी तथ्यों का आकलन किया गया है। जैसे विज्ञान एक ऊर्जा शक्ति से विभिन्न यन्त्रों के सहारे स्वेच्छानुसार रेल, तार, मोटर, बिजली आदि का प्रयोग करने के द्वार खोलता है, वैसे ही तन्त्र-विज्ञान परमाणु से महत्तत्त्व तक की सभी वस्तुओं को आध्यात्मिक एवं उपासना-प्रक्रिया द्वारा उन पर अपना आधिपत्य जमाने की ऊर्जा प्रदान करता है। अनुपयोगी तथा अनिष्टकारी तत्त्वों पर नियन्त्रण रखने की शक्ति पैदा करता है तथा इन्हीं के माध्यम से अपने परम तथा चरम लक्ष्य की सिद्धि तक पहुँचाता है।

मन्त्र, जप एवं तान्त्रिक विधानों के बल पर मानव की चेतना ग्रंथियाँ इतनी जागृत हो जाती हैं कि उनके इशारे पर बड़ी-से-बड़ी शक्ति से सम्पन्न तत्त्व भी वशीभूत हो जाते हैं। तान्त्रिका-साधनानिष्ठ होने पर वाणी, शरीर तथा मन इतने सशक्त बन जाते हैं कि उत्तम इच्छाओं की प्राप्ति तथा अनुत्तम भावनाओं का प्रतीकार सहज बन जाता है। भारत तन्त्रविद्या का आगार रहा है। प्राचीनकाल में तन्त्र-विज्ञान पूर्ण विकास पर था, जिसके परिणामस्वरूप ही ऋषि-मुनि, सन्त-साधु, यती-संन्यासी, उपासक-आराधक अपना और जगत् का

कल्याण करने के लिए असाध्य को साध्य बना लेते थे।

'मन्त्राधीनास्तु देवताः' इस उक्ति के अनुसार देवताओं को अपने अनुकूल बनाकर छायापुरुष, ब्रह्मराक्षस, योगिनी, यक्षिणी आदि को सिद्ध कर लेते थे और उनसे भूत-भविष्य का ज्ञान तथा अतर्कित-अकल्पित कार्यों की सिद्धि करवा लेते थे।

पारद, रस, भस्म और धातु-सिद्धि के बल पर दान-पुण्य, जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति, बड़े-बड़े यज्ञ-योगादि के लिए अपेक्षित सामग्री की प्राप्ति आदि सहज ही कर लेते थे और सदा अयाचक वृत्ति से जीवन बिताते थे।

यह सत्य है कि सभी वस्तुओं के सब अधिकारी नहीं होते हैं और न सभी लोग सब तरह के विधानों के जानने के ही। साधना को गुप्त रखने का तन्त्रशास्त्रीय आदेश भी इसीलिए प्रसिद्ध है—

गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं प्रयत्नतः।

और—

'Hold fast silence what is your own lest icy fingers be laid upon your lips to seal them forever.'

(प्रयत्नपूर्वक मौन रखिये ताकि आपके होठ सदा के लिये बन्द न हो जायँ।) अतः सारांश यह है कि ऐसी वस्तुओं को गुप्त रखने में ही सिद्धि है।

तन्त्र योग में शरीर और ब्रह्माण्ड का जितना अद्भुत साम्य दिखाया गया है, वैसा अन्यत्र कहीं भी दुर्लभ है। **'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'** (जैसा पिण्ड-शरीर में, वैसा ही ब्रह्माण्ड में) इस उक्ति को केवल पुस्तकों तक ही सीमित न रखकर प्रत्येक वस्तु को उसके गुणों के अनुसार पहचानकर उसका उचित तन्त्र द्वारा विनियोग करते हुए प्रत्यक्ष कर दिया है।

तन्त्र के प्रयोगों में भी एक अपूर्व वैज्ञानिकता है, जो प्रकृति से प्राप्त पञ्चभूतात्मक पृथ्वी, जल, तेज, अग्नि, वायु और आकाश—वस्तुओं के सहयोग से जैसे एक वैज्ञानिक रासायनिक प्रक्रिया के द्वारा नवीन वस्तु की उपलब्धि करता है वैसे ही—नई-नई सिद्धियों को प्राप्त करता है।

तन्त्रों ने प्रकृति के साथ बड़ा ही गहरा सम्बन्ध स्थापित कर रखा है। इसमें छोटे पौधों की जड़ें, पत्ते, शाखाएँ, पुष्प और फल सभी अभिमन्त्रित उपयोग में लिए जाते हैं। मोर के पंख तान्त्रिक विधान में 'पिच्छक' बनाने में काम आते हैं तो माष के दाने कुछ प्रयोगों में अत्यावश्यक होते हैं। सूर्य-ग्रहण और चन्द्र-ग्रहण में तान्त्रिक-साधना का बड़ा ही महत्त्व है। श्मशान, शून्यागार, कुछ वृक्षों की छाया, नदी-तट आदि इस साधना में विशेष महत्त्व रखते हैं।

स्नान, गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आरती और पुष्पांजलि आदि पूजा-पद्धति की क्रियाएँ तन्त्रों के द्वारा ही सर्वत्र व्याप्त हुई हैं। इस तरह तन्त्र विज्ञान और विज्ञान तन्त्र का परस्पर पूरक है, यह कहा जाए तो कोई अत्युक्ति नहीं है।

तन्त्र-साधना से पूर्व विचारणीय

एक निश्चय

किसी भी कार्य का आरम्भ करने से पहले पर्याप्त सोच-विचारकर, उससे होने वाले फलाफल के प्रति अपनी निश्चित धारणा बना लेनी चाहिए। '**देहं पातयामि वा कार्यं साधयामि**—शरीर को नष्ट कर दूँ (पर) कार्य को सिद्ध करूँ'—ऐसी तैयारी होने से साहस बढ़ता है और विघ्न-बाधाएँ लक्ष्य के प्रति बढ़ने से रोक नहीं सकतीं।

इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि—किसी एक प्रकार की साधना पर मन को स्थिर न करें। जैसे सष्टि की प्रत्येक वस्तु में कुछ-

न-कुछ अन्तर होने के कारण विविधता रहती है, उसी प्रकार साधनाओं में भी छोटी-बड़ी विषमता रखते हुए विविधता दिखलाई गई है, किन्तु सिद्धि सभी से होती है। अतः जिस प्रकार की साधना की ओर अपना मन लगे अथवा किसी महात्मा, विद्वान, हितैषी या गुरु के द्वारा उपदेश प्राप्त हो, उस पर स्थिर-विश्वास रखकर आगे बढ़ना चाहिए। ऐसी साधनाओं में विशेष रूप से विश्वास होने से ही श्रद्धा जम जाती है और श्रद्धालु पुरुष ही अपने कार्यों में दत्त-चित्त होकर अपने प्रयत्नों से विजय प्राप्त करता है।

शुद्ध आराधना

जब मन में दृढ़ निश्चय हो जाए, तो सबसे पहले सात प्रकार की शुद्धियों पर अवश्य ध्यान देना चाहिए। इन शुद्धियों के बारे में कहा गया है कि—

> **अंग वसन मन भूमिका, द्रव्योपकरण सार।**
> **न्याय द्रव्य विधि-शुद्धता, शुद्धि सात प्रकार॥**

अर्थात् आराधना करते समय (१) शरीर, (२) वस्त्र, (३) मन, (४) भूमि, (५) द्रव्य-सामग्री, (६) न्याय पूर्वक उपार्जित धन और (७) विधि की शुद्धता इन सात शुद्धियों पर ध्यान रखने से उत्तम फल प्राप्त होता है।

बहुत बार ऐसा होता है कि दुःखी व्यक्ति अपनी साध्य-दृष्टि से शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त करने के लिए विधान कुछ कम होता है तो, अथवा शुद्धि में वास्तविकता न हो, तब भी उसकी तरफ सावधानी नहीं रखते तथा फल-सिद्धि देखने को लालायित रहते हैं। इस तरह के शीघ्रस्वभावी साधक को सावधान करने के लिए कहा गया है कि—

> **यथैवाविधिना लोके, न विद्या-ग्रहणादि यत्।**
> **विपर्यय-फलत्वेन, तथेदमपि भाव्यताम्॥**

अर्थात्—जैसे बिना विधि के विद्या-ग्रहणादि कार्य संसार में नहीं किए जाते, क्योंकि विधि-रहित इन विद्याओं के ग्रहण से विपरीत फल होता है, इसी प्रकार साधक को साधना में भी विधिहीनता से कोई कर्म नहीं करना चाहिए। साथ ही पहले विधान को ठीक तरह से समझ कर साधना करनी चाहिए। जिस मनुष्य से विधान बराबर नहीं होता है, वह असिद्धि में विद्या का दोष बताता है।

साधक की योग्यता

साधना करने से पहले प्रत्येक साधक को चाहिए कि वह 'इस कार्य को करने की योग्यता स्वयं में है अथवा नहीं ?' यह अवश्य विचार करे जैसे कि किसी औषधि को पुष्टि-कारक बनाने के लिए वैद्य ने उत्तमोत्तम सामग्री और शास्त्रीय विधान के अनुसार उसका निर्माण भी किया; किन्तु उसे पचाने की शक्ति खाने वाले के शरीर में नहीं हो, तो उसमें वैद्य का क्या दोष है ? और औषधि का लाभ भी क्या होगा ? अथवा पचाने की शक्ति रहने पर भी उसके पथ्य के रूप में बताए गए नियमों का यथावत् पालन नहीं किया जाए तो रोग-शमन की अपेक्षा रोग और बढ़ेगा ही। ऐसी परिस्थिति में औषधि और वैद्य दोनों का क्या दोष है ? अतः यह पूर्णरूपेण ध्यान रखना चाहिए कि किसी प्रकार की साधना करने से पहले अपनी योग्यता, पात्रता, आत्मबल एवं दृढ़ता का विचार करके ही सिद्धि के लिए प्रयास करें तथा प्रभु-कृपा से सिद्धि प्राप्त हो जाए, तो उसका अनुचित उपयोग न करें।

निरन्तर प्रयत्न

'देवता मन्त्रों के अधीन हैं'। अतः वे साधक की पूर्णरूपेण सहायता करते हैं। किन्तु कभी-कभी साधक के पुण्यों की न्यूनता के कारण जो फल तत्काल प्राप्त होना चाहिए, वह उस समय नहीं मिल पाता और

उसका परिणाम यह होता है कि जपकर्ता-साधक कुछ हताश हो जाता है। धीरे-धीरे उसके प्रयास में शिथिलता आने लगती है। और कभी-कभी तो ऐसी स्थिति भी आ जाती है कि वह सिद्धि के द्वार पर पहुँच कर भी लौट आता है।

इसके लिए एक बात समझ लें, कि जैसे दो बालकों का जन्म एक ही समय में होता है और उनके जन्म-समय के ग्रहों के योग भी समान होते हैं, फिर भी एक राज्य करता है और एक ऑफीसरी। काम दोनों के समान हैं, किन्तु पद में अन्तर आ जाता है। तब यही कहना पड़ता है कि राज्य करने वाले के पुण्य प्रबल थे और दूसरे के कम। इसी प्रकार साधना करने वालों के फल में भी तरतमता हो जाती है। अतः हताश या शिथिल न होकर निरन्तर प्रयत्न करते रहें।

समान-शक्ति समान-श्रद्धा

साधक के लिए यह अत्यावश्यक है कि वह किसी भी साधना अथवा प्रयोग में समान-शक्ति का चिन्तन करे अर्थात् प्रयोग छोटा हो, अथवा बड़ा; कार्य सभी सम्पन्न करने हैं, अतः उनमें किसी प्रकार से हीनभाव न आने दे तथा कर्तव्य कर्मों के प्रति भी उदास भाव न रखे। यदि कर्ता के मन में छोटा-बड़ापन घर कर जाएगा, तो क्रिया में अन्तर आ जाएगा और क्रिया में अन्तर आ जाने से सफलता में भी अन्तर आ जाएगा।

साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि सभी प्रकार के प्रयोगों में शास्त्र ही प्रमाण हैं और शास्त्रों के आदेशों के अनुसार किए गए कार्य ही सफल होते हैं। अतः उसमें अपने मन की प्रवृत्ति के आधार पर इच्छानुसार परिवर्तन अथवा मिश्रण न करें। हमारे तन्त्रों में ऐसे मिश्रण के कारण ही वास्तविकता से हम दूर हो गए हैं और यथार्थ को छोड़कर कल्पित को ही अपनाए हुए हैं।

मनमाना मिश्रण नहीं

हम देखते हैं कि कुछ साधना के अनुरागी अपने प्रयोग के शीघ्रता से सिद्ध होने की इच्छा से अथवा इधर-उधर की पुस्तकों में पढ़कर अपनी प्रचलित प्रक्रिया में मनमाना मिश्रण करने लगते हैं अथवा कुछ परिवर्तन-परिवर्धन भी कर लेते हैं। इस प्रकार की प्रवृत्ति को शास्त्रों में 'संकरीकरण' कहा गया है। '**बृहद् ज्योतिषार्णव**' नामक ग्रन्थ में स्पष्ट कहा है कि—

संकरत्वस्य करणे महान् दोषः प्रकीर्तितः।
तन्त्रसांकर्यकरणान्नरकं प्रतिपद्यते ॥
रौद्रोक्तं मतमाश्रित्य डामरोक्तं न चाचरेत्।
कल्पोक्तेऽनुष्ठीयमाने पटलोक्तं न चाचरेत् ॥

अर्थात्—'विधि में संकरता-मिश्रण करने में महान् दोष कहा गया है। तन्त्र में संकरता करने से नरक में जाना पड़ता है। जैसे—रुद्रयामलोक्त प्रयोग करते हों, तो उसमें डामर-तन्त्र के प्रयोग को नहीं मिलाएँ। जहाँ कल्प द्वारा वर्णित प्रयोग चलता हो, वहाँ पटल में कहे गए प्रयोग को न मिलाएँ।'

यदि इस प्रकार की कोई आवश्यकता का अनुभव हो, तो किसी योग्य अनुभवी विद्वान् अथवा प्रामाणिक ग्रन्थ का सहारा लेकर कार्य करें। अपने इष्टदेव से प्रार्थना करें कि—'मेरे इस कार्य में यदि कोई त्रुटि हो, तो उत्तम मार्ग बताकर उसे पूर्ण करें।' ऐसा करने से स्वप्न द्वारा अथवा किसी अन्य माध्यम से मार्ग मिल जाता है। ऐसा अनेक साधकों का अनुभव है और जपादि के अन्त में अपराध-क्षमापना के स्तोत्र पाठ का विधान भी इसीलिए है।

स्व-सम्प्रदाय पर विश्वास

श्रद्धा और विश्वास के द्वारा कठिन से कठिन कार्य भी सिद्ध होते

हैं, यह कभी नहीं भूलना चाहिए और कर्तव्य कर्म में आगे बढ़ते रहना चाहिये, यही सिद्धि का सच्चा मार्ग है। इसके साथ ही यह भी मुख्य रूप से ध्यान रखना चाहिये कि—

विना स्वधर्मं यत् किञ्चिद् देवताराधनादिकम्।।
परिभ्रश्येत तद् यस्मात् क्षणात् सैकतहर्म्यवत्।।

"जो जिस सम्प्रदाय एवं कुल-परम्परा में उत्पन्न हुआ है, उसी पर पूर्ण निष्ठा रखकर साधना करे।" इस सम्बन्ध में शास्त्रकारों ने स्पष्ट कहा है कि—

अर्थात् जो साधक अपने धर्म-सम्प्रदाय, देवता और उनकी आराधना-प्रक्रिया को जाने बिना साधना में प्रवृत्त होता है, वह बालू रेती से बनी हुई नींव पर बनाये गये महल के समान नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है।

इसी प्रकार उत्तम प्रामाणिक ग्रन्थों के अभाव में कुछ लोग अपने सम्प्रदाय पर विश्वास न कर अन्य सम्प्रदाय की साधना में लग जाते हैं। उदाहरणार्थ शाक्त परम्परा में पला हुआ व्यक्ति जैन परम्परा के मन्त्र-तन्त्रों की साधना करे, बौद्ध परम्परा में पला हुआ अथवा दीक्षित व्यक्ति मुस्लिम सम्प्रदाय के मन्त्रों का प्रयोग करे। ऐसी प्रवृत्ति आकर्षक भले ही हो, पर सफलता नहीं मिलती। ऐसे व्यक्ति के लिए निम्न श्लोक स्मरणीय है—

यो ध्रुवाणि परित्यज्य ह्यध्रुवाणि निषेवते।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति ह्यध्रुवं नष्टमेवतत्।।

'जो निश्चित को छोड़कर अनिश्चित को प्राप्त करना चाहता है, उसके निश्चित नष्ट हो जाते हैं और अनिश्चित तो नष्ट हैं ही।' अतः अपने परम्परागत मार्ग को न छोड़ें।

मर्यादा का पूर्ण पालन

उपासना में प्रवृत्त होने के पश्चात् कुछ उपासक-धर्मों का पालन अत्यावश्यक होता है, जिनमें (१) भावना की दृढ़ता, (२) निन्दावृत्ति का त्याग, (३) अविचल श्रद्धा, (४) मितभाषण, (५) नित्य-अनुष्ठान-शीलता, (६) अपरिग्रहवृत्ति, (७) निर्मल चित्तवृत्ति आदि आते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य मर्यादाएँ भी होती हैं, जिनका पालन अति आवश्यक होता है। उदाहरण के लिए—

एक सर्प का मन्त्र है, वह बिस्मिल्ला का मन्त्र कहलाता है। अर्थात् उस मन्त्र का द्रष्टा—मूल साधक बिस्मिल्ला नामक कोई फकीर है। इस मन्त्र के साधक को ग्रहण के समय कण्ठ तक पानी में खड़े रहकर लोबान की धूप देते हुए जप करना पड़ता है। बस, ऐसा एक ग्रहण में घण्टा-आधे घण्टे के समय तक जप करने से यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है। बाद में जब किसी सर्प से डसे हुए व्यक्ति का जहर उतारना हो, तब उस व्यक्ति को किसी खम्भे से इस ढंग से बाँधना पड़ता है, जिससे कि जहर उतारने से पूर्व वह सर्प उसके शरीर में आता है और क्रुद्ध होकर मान्त्रिक को डसने का प्रयत्न करता है। कई बार इस तरह की असावधानी से मन्त्रसाधक को प्राणघातक प्रहार का कष्ट उठाना पड़ता है। प्रेतबाधा उतारने में भी ऐसी ही आपत्तियाँ आती हैं। इसके अतिरिक्त इस मन्त्र के साधक को भोजन और व्यवहार में भी सावधान रहना पड़ता है। जिसमें गन्ना चूसना निषिद्ध है। ककड़ी को खड़ी चीरकर नहीं खाया जाता और रास्ते में आने वाले पानी के प्रवाह को लांघना नहीं चाहिए, अपितु पानी में पैर रखकर ही जाना चाहिये, अन्यथा मन्त्र की सिद्धि नष्ट हो जाती है।

इसी तरह रजस्वला का स्पर्श, अथवा अन्य अपवित्रता के कारण भी मन्त्र काम नहीं करता है। इत्यादि।

४ तन्त्र में उपयोगी साधन और उनकी वैज्ञानिक उपयोगिता

यह हम पहले बता चुके हैं—तन्त्र में सभी प्राकृतिक उपयोगी साधनों से उनके गुण, धर्म एवं क्रियाकारित्व के आधार पर यथासमय सहायता ली जाती है। इसके साथ ही हमने 'तन्त्र शक्ति' ग्रन्थ में यह भी स्पष्ट किया था कि 'किसी भी कार्य की सिद्धि के लिये बिजली के तारों की तरह पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पाँच तत्त्वों में से कुछ का मिश्रण करने पर ही वस्तु की प्रयोगात्मकता सिद्ध होती है।' और यह भी सत्य है कि—सत्त्व, रजस् एवं तमस्' रूप तीन गुणों के मिश्रण से ही सृष्टि होती है, किसी एक से नहीं। केवल उनकी न्यूनाधिकता से वस्तु में गुण-धर्म आदि बदल जाते हैं और उसमें कार्य करने की शक्ति आ जाती है। यही बात वेदान्त के 'पञ्चीकरण-सिद्धान्त' में बताई गई है। अतः तन्त्र में भी उसकी सिद्धि के लिए अनेक सहायक तत्त्वों का वैज्ञानिक दृष्टि से सहयोग प्राप्त किया जा सकता है, जिनका निर्देश इस प्रकार है—

(१) आध्यात्मिक तत्त्व

साधना के लिये शरीर, मन एवं अन्यान्य इन्द्रियों का सहयोग सबसे पहले अत्यावश्यक है।

शरीर स्वस्थ हो, स्वच्छ हो, कार्य करने में समर्थ हो और द्वन्द्व—शीत, गर्मी, वायु आदि के सहन करने में सक्षम हो; क्षुधा, तृषा, स्थिर आसन और मल-मूत्रादि के वेगों को धारण करने में शिथिल न हो।

मन—चंचलता, व्यर्थ-चिन्तन और अनुत्साह से मुक्त होकर एकाग्रता का अभ्यासी हो। **इन्द्रियाँ**—वासना-वृत्ति के प्रति उदासीन, संयमशील तथा अपने-अपने स्वभाव के प्रति आवश्यकता से अधिक लोलुप न हों। इनके साथ ही चित्तवृत्ति की निर्मलता और अहंकार का सर्वतोभावेन त्याग साधक के कार्य को बहुत ही सरलता से आगे बढ़ाते हैं।

आत्मा सभी इन्द्रियों का अधिष्ठाता है। उसी के प्रकाश से सभी इन्द्रियाँ कार्य करती हैं। इनके साथ ही आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ने का प्रयास ही उपासना का अर्थ है। इस प्रकार की उपासनाओं में तन्त्र द्वारा की जाने वाली उपासना भी एक महत्त्वपूर्ण उपासना है। जब कोई किसी प्रकार की साधना द्वारा किसी सिद्धि को प्राप्त करना चाहता है तो उसे आध्यात्मिक दृष्टि से अपने मन को स्थिर बनाना चाहिये। मन की स्थिति से ही अन्य इन्द्रियाँ सुस्थिर होती हैं और उसका प्रभाव यह होता है कि सभी प्रकार से साधक का लक्ष्य एकांगी हो जाता है और जिसे 'ह्वील पावर' आत्मशक्ति कहते हैं, उसके द्वारा जप, तप, तान्त्रिक विधि आदि की मिश्रित रूप से सिद्धि मिलती है।

(२) आधिदैविक तत्त्व

आत्मबल के साथ-साथ देवबल भी किसी साधना में परम आवश्यक है। देवता को अनुकूल बना लेने से दैवी-तत्त्व से युक्त वस्तु अपने वास्तविक स्वरूप में फलवती होती है। तन्त्रसाधना में अनेक वस्तुएँ ऐसी प्रयोग में लाई जाती हैं, जिनके आधार पर उनके गुण-धर्मों का फल प्राप्त किया जाता है। इस तत्त्व को जगाने के लिये दो तरह के प्रयास किये जाते हैं—१. कार्यसाधक देव के मन्त्र का जप और २. वस्तु को अभिमन्त्रित करना। जैसे किसी वृक्ष की जड़ (मूल) का प्रयोग करना है, तो पहले लक्ष्मी-प्राप्ति का लक्ष्य हो तो—लक्ष्मी के मन्त्र का जप करना चाहिए तथा फिर उस वृक्षमूल की सिद्धि का मन्त्र जप करें।

इसके साथ ही यदि लक्ष्मी-प्राप्ति के लिये शिव, विष्णु, गणपति, हनुमान आदि देवताओं से कामना करनी हो, तो इनमें से किसी एक के मन्त्र का जप भी करना चाहिए।

(३) आधिभौतिक तत्व

'पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश' ये पाँच तत्त्व आधिभौतिक कहलाते हैं। तन्त्र-प्रयोग में इनका सहयोग बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। तान्त्रिक कार्यों में सिद्ध मन्त्र को पृथ्वी पर या सोना, चाँदी, ताँबा और लोहे पर लिखकर उसकी पूजा की जाती है। पृथ्वी में गड्ढा खोद कर यन्त्र गाड़ दिये जाते हैं। वृक्ष के पाँचों अंग—मूल, शाखा, पत्र, पुष्प और फल या बन्दे को अभिमन्त्रित कर, प्रयोग में लिया जाता है। अनेक विध वनस्पति से प्राप्त सामग्री द्वारा कर्मों के अनुसार हवन होता है। जल को अभिमन्त्रित कर, रोग-निवृत्ति के लिए पिलाया जाता है। जल में देवी-देवताओं का आवाहन करके उनकी पूजा की जाती है तथा जल में हाजरात के प्रयोग भी देखे गये हैं। अग्नि में धूप और हवन का विधान है। धूप के तन्त्र-प्रयोगों में अष्टांग धूप, षडंगधूप और गूगल, राल, लोबान आदि प्रमुख हैं। वायु की तन्मात्रा गन्ध है। सुगन्धित पदार्थों से देवताओं की पूजा और मन्त्र जपकर फूंक मारने का प्रयोग भी प्रसिद्ध है। आकाश तत्त्व का सम्बन्ध शब्द से है। शब्द की ध्वनि, उच्चारण, जप, पाठ, प्रार्थना आदि सभी तान्त्रिक साधना में परम उपयोगी हैं।

इस तरह स्थूल रूप से उपर्युक्त पाँचों तत्त्वों में सभी का समावेश हो जाता है। ये तत्त्व साधक के द्वारा पूर्ण रूप से आत्मसात् किये जाएँ, यह वाञ्छनीय है, किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि यदि पूर्णरूपेण पालन न किया जा सके, तो कोई साधना ही न करे। हाँ, इतना अवश्य है कि इस ओर प्रवृत्ति रहनी चाहिए और जहाँ तक सम्भव हो, तात्कालिक प्रभाव में न आकर स्थिर मन, स्थिर विचार और स्थिर विश्वास से कार्य करें, अवश्य सिद्धि होगी।

५ | तान्त्रिक उपकरण—एक परिचय

पूजा के उपकरण—आधिभौतिक तत्त्वों को सूक्ष्म रूप से यदि देखा जाए, तो पूजा की सामग्रियों में उपयोगी आसन, जल, गन्ध, अक्षत, पुष्प, अबीर, गुलाल, धूप, दीप, नैवेद्य, फल, दक्षिणा आदि सभी तान्त्रिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इनके तत्त्वों को पहचानना और उनका सावधानी से प्रयोग करना भी अत्यावश्यक है। कामना अथवा कर्मभेद से आसनादि कुछ वस्तुओं का विचार इस प्रकार है—

आसन—जब हम किसी प्रकार की साधना करते हैं, तो उसके लिए किसी एक स्थान पर बैठकर जपादि कर्म करने पड़ते हैं। जमीन पर बिछाने के लिये गोल, समचौरस अथवा बायें-दायें भाग से लम्बा और आगे-पीछे से चौरस कुशा, कम्बल या ऊन का, पटसन का अथवा वस्त्र का आसन उपयोग में आता है। इसके लिए कभी-कभी पटिये का भी प्रयोग होता है। इस प्रकार बैठने की स्थिति को भी 'आसन' कहा जाता है। इन तीनों के आसन के रूप में व्यवहार के आदेश तन्त्र-शास्त्रों में प्राप्त होते हैं, जिनमें क्रमशः बिछाने के आसनों में मृगचर्म और व्याघ्रचर्म के प्रयोग सिद्धि के लिए उपयोगी होते हैं।

मुख्य रूप से जो आसन कुश अथवा ऊन के बनते हैं, उनमें रंग का भी बड़ा महत्व है। श्वेत रंग शान्ति और सात्विक कर्म के लिए उपयोगी कहा गया है। **काला रंग** तामस कर्म—मारण-उच्चाटन के लिये ग्राह्य है। **लाल रंग** आकर्षण, वशीकरण, लक्ष्मी-प्राप्ति, देवी-उपासना

आदि में उपयोगी है और पीला रंग भी उपर्युक्त कर्मों में प्रयुक्त होता है।

आसन का दूसरा अर्थ उपासना में बैठने की पद्धति भी है। इस दृष्टि से जब हम ऊपर बताये हुए आसन पर बैठते हैं, तो पैरों को किस तरह रखा जाए—इसका ध्यान रखना चाहिए। यह बात योगशास्त्र से सम्बन्धित है। पतञ्जलि मुनि ने योगदर्शन में **'स्थिरसुखमासनम्'** यह सूत्र लिखकर निर्देश किया है कि साधक को उपासना के समय ऐसे ही आसन का उपयोग करना चाहिए, जिसमें स्थिर सुख हो अर्थात् जिस ढंग से बैठने में मन प्रसन्न रहे, कष्ट न हो, दीर्घकाल तक बैठा जा सके। ऊबड़-खाबड़ भूमि, अस्वच्छ स्थान, कँटीली, रेतीली भूमि और अरुचिकर बिछाने के आसन पर बैठने से मन जपादि में नहीं लगता, यह स्पष्ट ही है और साथ ही बैठने की पद्धति भी यदि अनुचित हो, तब तो और भी कठिनाई होती है। अतः आइये, हम बैठने की विधि पर भी विचार कर लें।

(१) **पद्मासन**—यह सब आसनों में श्रेष्ठ आसन है। आसन बिछा कर उस पर बैठ जाइये। दाहिने पैर को उठाकर बायीं जाँघ पर रखिये। इसी प्रकार बाएँ पैर को उठाकर दाहिनी जाँघ पर रखें। पीठ की हड्डी सीधी रखें। दोनों हाथ दोनों घुटनों पर अथवा गोद में रख कर आँखें बन्द करके मानसिक जप-ध्यान करने से शीघ्र सफलता मिलती है।

(२) **अर्धपद्मासन**—बाएँ पाँव को दाहिनी जाँघ के पास सटाकर रखें। पुनः दाहिने पाँव को बायीं जाँघ के ऊपर रखें। जप, स्वाध्याय, कीर्तन, प्राणायाम, ईश्वर प्रणिधान आदि के लिए यह आसन उत्तम है।

(३) **सिद्धासन**—पद्मासन के समान ही पैरों को रखकर दोनों हाथ दोनों घुटनों पर ज्ञानमुद्रा बनाकर रखें।

(४) **भद्रासन**—अर्धपद्मासन के समान पैरों को रखकर दोनों हाथों को घुटनों पर रखें।

(५) **सुखासन**—दोनों पैरों से पालथी मारकर बैठने से यह आसन बनता है।

(६) **वीरासन**—उग्र कर्म के लिए दोनों पैरों को, घुटनों से मोड़ कर कटि के नीचे पीछे की ओर रखें।

गन्ध-परिचय—पूजा, यंत्रादि लेखन और तिलक के लिये गन्ध का प्रयोग होता है। श्वेत चन्दन, लाल चन्दन, केशर, कस्तूरी, गोपी चन्दन, सिंदूर, काजल, कुंकुम, गुलाल जैसी प्रसिद्ध वस्तुओं के गन्ध तैयार किये जाते हैं। इसमें लाल गन्ध देवी की उपासना, आकर्षण और वशीकरणादि में उपयोगी है। अष्टगन्ध का विधान भी तन्त्रों में विभिन्न प्रयोगों के आधार पर बताया गया है। देवी के अष्टगन्ध के बारे में यह पद्य प्रसिद्ध है—

चन्दनागुरुकर्पूर-कुङ्कुमं रोचनं तथा।
शिलारसो जटामांसी कर्पूरं चैकवृद्धितः॥

चन्दन, अगर, हल्दी कुंकुम, गोरोचन, शिलाजीत, जटामांसी बालछड़ तथा कपूर इन सबको क्रम से एक-एक अंश बढ़ाकर अष्टगंध बनाएँ।

इसी प्रकार गणपति, हनुमान तथा भैरव की पूजा के लिए सिंदूर की प्रधानता वाला अष्टगंध तैयार होता है। ऐसे गन्ध को प्रत्येक साधक शरीर के विभिन्न अंगों पर धारण भी करता है, जिसमें ललाट प्रमुख स्थान है। इसके अतिरिक्त भुजा, वक्षःस्थल और उदर भाग पर भी गन्ध लगाया जाता है।

तिलक की तान्त्रिकता भी तन्त्रों में प्रसिद्ध है, जिसमें विशिष्ट आकारों की प्रधानता रहती है। देवीभक्त बिन्दी अथवा त्रिशूल का आकार बनाएँ, शिवभक्त त्रिपुण्ड्र, वैष्णव ऊर्ध्वपुण्ड्र, विशिष्ट इष्ट

वाले व्यक्ति अपने-अपने इष्टदेव के आयुधों की मुद्राओं अथवा बीज-मन्त्रों (ॐ, ह्रीं, क्लीं श्रीं) आदि को भी बनाकर मस्तक पर धारण करते हैं। पुष्टिमार्ग सम्प्रदाय में कुंकुम और गोरोचन का तिलक धारण किया जाता है। रामानुज सम्प्रदाय में श्वेत चन्दन तथा मध्य में कुंकम रेखा का विधान है। रामानन्दी, खाकी, राधास्वामी मतानुयायी, कबीरपन्थी आदि सभी मतों की अपनी-अपनी मुद्राएँ तिलक के रूप में निश्चित हैं।

कुछ सम्प्रदायों में तपी हुई मुद्राएँ दोनों भुजाओं पर लगाने की भी पद्धति है। प्राचीन काल में साधक लोग तिलक, वस्त्र, माला, आसन आदि वस्तुओं का प्रयोग शास्त्रोक्त विधान से करते थे। आज भी सभी सम्प्रदाय इस पद्धति का यथातथा अनुसरण करते हैं जो कि तन्त्रों की ही आज्ञा पर अवलम्बित है। कहा जाता है कि—

देवो भूत्वा देवं यजेत्।
नादेवो देवमर्चयेत्॥

अर्थात् देवता बनकर ही देवता की पूजा करें, देवस्वरूप के बिना देवता की पूजा न करें। लोकदृष्टि से इसे शासकीय विभागों की वेष-भूषा (यूनिफार्म) और विशेष चिह्न (चपड़ास) कह सकते हैं। ऐसे कुछ प्रयोग आगे तिलक-प्रयोगों में प्रदर्शित हैं।

अक्षत—पूजा के उपकरणों में अक्षतों (चावलों) का प्रयोग सर्वविदित ही है, किन्तु अक्षतों का तान्त्रिक पद्धति से भी उपयोग महत्त्वपूर्ण है। इसके लिए विशेष ज्ञातव्य है कि—प्रयोग के लिए अखण्डित चावलों को निकालकर शुद्ध कर लें, बाद में उनमें सिन्दूर, हल्दी और कुंकुम मिलाकर थोड़ा-सा घृत मिला दें अथवा सुगन्धित इत्र डालकर रंग लें। देवीपूजा में ऐसे अक्षतों का प्रयोग लक्ष्मी प्राप्त कराता है। केवल केशर से रंग कर अष्टोत्तर शत अथवा १००८ मन्त्रों का जप करते हुए एक-एक अक्षत चढ़ाने से सुख-शान्ति प्राप्त होती है। केवल

सिन्दूर से अथवा हिंगलू से रंग कर बनाए गए अक्षतों का प्रयोग आकर्षण के लिए होता है। षट्कर्मों के अनुसार जो-जो रंग उनमें विहित हैं, उनको ध्यान में रखकर चावलों को रंग कर प्रयोग करने से फल-सिद्धि होती है। इसी प्रकार अन्य फल, मेवे आदि भी चढ़ाये जाते हैं।

पुष्प—देवताओं को पूजा में पुष्पों एवं तुलसी, बिल्वपत्र, दूब आदि का उपयोग प्रसिद्ध है। '**पुष्पचिन्तामणि**' में पुष्पों का माहात्म्य बताते हुए लिखा गया है कि—

पुष्पैर्देवाः प्रसीदन्ति पुष्पे देवाश्च संस्थिताः।

अर्थात् पुष्पों से देवता प्रसन्न होते हैं, क्योंकि पुष्पों में देवताओं का निवास है। इसी प्रकार आगे बताया गया है कि—

परं ज्योतिः पुष्पगतं पुष्पेणैव प्रसीदति।
त्रिवर्गसाधनं पुष्पं पुष्टि-श्री-स्वर्गमोक्षदम् ॥

पुष्प में विराजमान परम ज्योति पुष्प से ही प्रसन्न होती है। पुष्प धर्म, अर्थ, काम, पुष्टि, श्री, स्वर्ग और मोक्ष का देने वाला है।

ये पुष्प कुछ तो विहित हैं और कुछ निषिद्ध। इसका ज्ञान न होने से भी सिद्धि में विलम्ब होता है। '**उत्तरोत्तरतन्त्र**' में पार्वतीजी ने शिव से इस सम्बन्ध में प्रश्न किया था कि कौन-कौन से पुष्प आपको प्रिय हैं? तब शिवजी ने उत्तर में अनेक पुष्पों के नाम बताए और उनमें भी किस मास में कौन से पुष्प चढ़ाए जाएं, यह भी बतलाया था। इनमें करबीर (कनेर), आक जाति, धतूरा, डाभ के फूल आदि विशेष हैं।

'**शिवधर्मसंग्रह**' में नन्दिकेश्वर ने कामना के आधार पर पुष्प पूजा का निर्देश करते हुए प्रायः २७ पद्यों में पुष्प नाम तथा कामनाओं का निर्देश किया है। जिनमें रेंडी, करबोर, धतूरा, आक, नीलकमल आदि शिव की पूजा के लिए उत्तम होने के साथ-साथ धन, पुष्टि और

सांसारिक सुख देने वाले हैं। मन्त्रसिद्धि के लिए सुगन्धित पुष्प, ज्ञान-प्राप्ति के लिए मल्लिका, पुत्र प्राप्ति के लिए कुन्द-मोगरा, आरोग्य के लिए कुशा के पुष्प एवं प्रिय-मिलन के लिए अशोक पुष्प से पूजा करनी चाहिए। कनेर से धन, कदम्ब से शत्रु-वशीकरण, सिन्दुवार से बन्धन-मुक्ति, पुष्टि के लिए पीत पुष्प, वश्य के लिए जल में उत्पन्न नीले अथवा लाल पुष्प उत्तम बताये गए हैं, जबकि विद्वैष और उच्चाटन के लिए नीम के पुष्पों से पूजा का विधान है।

ये पुष्प बासी, जमीन पर गिरे हुए, एक बार चढ़ाए हुए, सूँघे हुए, छिद्र से युक्त, कीड़े वाले तथा अपवित्रता से प्राप्त नहीं लेने चाहिए। प्रायः यह नियम है कि पुष्पों को अखण्ड रूप से ही चढ़ाना चाहिए। कई बार पंखुड़ियाँ तोड़कर हम पुष्प चढ़ाते हैं, यह ठीक नहीं है। पुष्प को जैसा वह प्राप्त होता है, वैसा ही चढ़ाने का शास्त्रीय विधान है। पुष्पों को लाकर पहले अधिवास करना चाहिये। उनके मन्त्र से अभि-मन्त्रित करना चाहिये तथा बाद में प्रयोग में लाना चाहिये।

धूप—देवता के समक्ष अथवा किसी भी उपासना सम्बन्धी कर्म में धूप लगाने से देवता प्रसन्न होते हैं। वेदों में अग्नि को देवताओं का दूत कहा गया है और यह भी कहा गया है कि 'अग्निमुखा वै देवाः' अर्थात् देवता अग्नि के मुख से ग्रहण करते हैं। इसी दृष्टि से देवता को उद्देश्य करके यज्ञ-हवन आदि किये जाते हैं। धूप भी उसका एक रूप है, पर इसमें सुगन्धित वस्तुओं को अग्नि में डालकर धुएं से सुवासित वाता-वरण की सृष्टि भी एक लक्ष्य है।

तन्त्र-ग्रन्थों में ऐसे अनेक प्रयोग आते हैं, जिनमें धूपदान अथवा धूप जलाते हुए जपकर्म सम्पन्न किया जाता है। साथ ही ऐसे कर्मों में कर्म-भेद से वस्तुओं को भी पृथक्-पृथक् रूप में धूप धूप के लिए प्रयोग में लाया जाता है। उदाहरण के लिए देवी की प्रसन्नता के लिए निम्न-लिखित वस्तुओं की धूप बनाई जाती है—

चन्दन, अगर, गूगल, लाख, कपूर, शर्करा, शहद गोघृत एवं अन्य

सुगन्धित द्रव्य आदि। मन्त्राक्षरों को औषधि से भी धूप बनाकर उसका प्रयोग होता है। मन्त्रोपासक के लिए यह उपयोगी है।

इसी प्रकार मुस्लिम तन्त्रों में लोबान की धूप का विचार है तो कहीं अन्यान्य बीज, पत्र, जड़ अथवा वृक्ष के पञ्चांग चूर्ण का।

अगरबत्ती, धूपबत्ती अथवा धूप बने हुए भी बाजार से प्राप्त होते हैं, किन्तु विशेष कार्य की सिद्धि के लिए विशेष प्रकार की धूप का निर्माण करके ही प्रयोग किया जाए, तो वह शीघ्र फलदायी होती है।

दीप—दीपक साक्षी के रूप में अग्निदेव का प्रतीक है। प्रत्येक पूजा में दीपक जलाया ही जाता है। कुछ प्रयोगों में अखण्ड दीपक जलाते हैं, तो कुछ में केवल कर्मारम्भ से कर्मसमाप्ति तक। तान्त्रिक-प्रयोगों में स्वतन्त्र रूप से दीपक जलाने और उसकी विधिवत् पूजा करके देवता के अर्पण के विशिष्ट प्रयोग उपलब्ध होते हैं। ऐसे दीपकों में शान्तिकर्म में घृत तथा उग्रकर्म में कड़ुए तेल के दीपक जलाए जाते हैं। भैरव तथा दुर्गा के तान्त्रिक दीप-प्रयोग हम आगे विधि सहित दे रहे हैं। दीपक के सम्बन्ध में ज्ञातव्य इस प्रकार है—

दीपदान-माहात्म्य

जिस प्रकार तन्त्रों में अन्यान्य प्रयोगों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए भगवती पार्वती ने प्रश्न किए हैं और उनके उत्तर में शिवजी ने उत्तर देते हुए प्रयोग दिखलाए हैं उसी प्रकार रुद्रयामल[1] में

---

१. यथाः—

श्रीपार्वत्युवाच।

यत्सूचितं पुरा नाथ! वृद्धि वै बटुकस्य च।
येन विज्ञातमात्रेण षट्कर्माणि साधयेत्॥

\+ \+ \+

आपत्काले महादेवि! दीपदानं समाचरेत्।
न तिथिर्न च नक्षत्रं न योगो नैव करणम्॥ इत्यादि।

श्रीपार्वती ने पूछा कि—देव ! ऐसा कोई प्रयोग बतलाइए कि जिसके करने से षट्कर्म-साधन सरलता से हो सके। इसके उत्तर में भगवान् शिव ने बताया कि—हे देवि ! आपत्ति के समय दीपदान करना चाहिए। इस प्रयोग के लिए तिथि, नक्षत्र, योग, करना, राशि, सूर्यादिग्रह-विचार आदि अपेक्षित नहीं हैं। इसी सम्बन्ध में विस्तार से पात्र-निर्माण वस्तु पात्रमान, आकार घृत-तैलमान, वर्तिकामना, आधार भूमि (वेदी), विघ्ननाशन के लिए अन्य देवपूजन एवं दीपदान, कीलक खनन आदि अनेक बातें समझाई हैं। इसी प्रकार कामना की दृष्टि से कर्तव्य कर्म का संकेत भी वहीं किया है। वैसा तान्त्रिक-कर्मों की साधना सामान्यतः गुरु द्वारा ही सीखनी चाहिए, तथापि हम सर्वसाधारण के लिए सरल एवं साररूप में परिचय तथा विधि प्रयोग-विभाग में दे रहे हैं।

यह दीपदान-कर्म मुख्य रूप से भैरव, हनुमान, शीतला, दुर्गा, कार्तवीर्यार्जुन आदि देवताओं की प्रसन्नता के लिए किया जाता है। पौष मास में रविवार के दिन सूर्य के समक्ष दीपदान का भी विधान है। कार्तिक मास में विष्णु भगवान् की तुष्टि के लिए भी दीपदान होता है। यह उत्तम तान्त्रिक विधि मानी जाती है।

(१) दीपदान-परिचय

हमारे सभी उपासना-कर्मों में दीपदान का बड़ा महत्त्व है। सूर्य, चन्द्र और अग्नि ये तीनों तेजोमय देव कर्मसाक्षी हैं। दीपदान के दो प्रकार हैं (१) पूजा अथवा पाठ के आरम्भ से पूर्व और (२) पाठपूजन समाप्ति के पश्चात् वैसे कामना-विशेष की दृष्टि से दीपदान का स्वतन्त्र विधान भी है। यहाँ हम कामना विशेष से सम्बद्ध प्रयोग की विधि दे रहे हैं।

(२) दीपदान-काल

(क) ऋतु—वसन्त, हेमन्त, शिशिर, वर्षा और शरद् ये ऋतुएँ दीपदान के लिए उत्तम मानी गई हैं।

(ख) मास—वैशाख, श्रावण, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष माघ और फाल्गुन मास दीपदान के लिए उत्तम हैं।

(ग) पक्ष—शुक्ल पक्ष उत्तम है। कृष्ण पक्ष मध्यम।

(घ) तिथि—प्रतिपदा, द्वितीया, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, द्वादशी, त्रयोदशी, पूर्णिमा उत्तम हैं।

(ङ) नक्षत्र—रोहिणी, आर्द्रा पुष्य, तीनों उत्तरा, हस्त, स्वाती, विशाखा, ज्येष्ठा और श्रवण उत्तम हैं।

(च) योग—सौभाग्य, शोभन, प्रीति, सुकर्म, वृद्धि हर्षण, व्यतीपात और वैधृत उत्तम हैं।

(छ) विशेष—सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण, संक्रांति, कृष्ण पक्ष की अष्टमी, दुर्गोत्सव नवरात्रि एवं महापर्व पर विशेष लाभप्रद।

(ज) समय—प्रातः, सायं मध्यरात्रि तथा अन्य यज्ञकर्म की पर्णाहुति से पूर्व।

(३) दीपदान-सामग्री

(१) कपिला गौ का गोमय, (२) इमली और आँवले का चूर्ण, (३) कामना के अनुसार दीपपात्र, (४) कामना के अनुसार घृत अथवा तैल, (५) सकंल्पानुसार बत्तियाँ, (६) आधार यन्त्र, (७) अखण्ड चावल (८) रक्त चन्दन, (९) करवीर, (५ पत्ती वाले) लाल फल, (१०) रेशमी लाल वस्त्र, (११) पंचगव्य, (१२) शलाका (बत्ती जलाने के लिए), (१४) नारियल, (१५) बिल्वफल, (१६) चन्दन, (१७) तांबे का कलश, (१८) सुपारी, (१९) अष्टगन्ध, (२०) ऋतु फल, (२१) पंच पल्लव, (२२) कुंकुम, सिन्दूर आदि पूजन सामग्री (२३) ब्राह्मण-वरणासामग्री (२४) दक्षिणा और (२५) नैवेद्यआदि, (२६) खादिर (खैर) की लकड़ी के बने ८ कीले, (२७) एक हाथ लम्बा भैरवदण्ड, (२८) माष एवं चावल पकाए हुए तथा (२९) छुरी-कटार।

दीपक सम्बन्धी कुछ शास्त्रीय प्रमाण

अष्टपलघृतदीपं यात्राकाले प्रकल्पयेत् ।
तस्य मार्गे भयं नास्ति स्वस्थश्च गृहमाप्नुयात् ।। १ ।।

८ पल घृत का ८ पल के धातुपात्र में दीपदान करने से यात्र में किसी प्रकार का भय नहीं होता है तथा सकुशल अपने घर लौट आता है। (एक पल चार तोले का होता है।)

दशपलमितं तैलं प्रत्यहं सप्तवासरे ।
राजवश्यकरं क्षिप्रं यदि साक्षाज्जगत्पति : ।। २ ।।

दस पल तेल से प्रतिदिन दस पल के पात्र में सात दिन तक (रात्रि में) दीपदान करने से यदि राजा साक्षात् जगत्पति हो, तब भी वश में हो जाता है ।

दशपलमिते पात्रे ब्रध्नोच्छ्राये तु त्रिंशवत् ।

इस दस पल मानवाले पात्र की ऊंचाई ६ अंगुल होनी चाहिए तथा (तोस तन्तुओं से बनी हुई बत्ती का प्रयोग करना चाहिए)।

एकादशपले पात्रे ब्रध्नोच्छ्राये तु पूर्ववत् ।
नृपपलमिते तैले ग्रहपीड़ानिवारणम् ।। ३ ।।
(पूर्ववदिति षडङ्गुलम्) ।

६ अंगुल की ऊँचाई वाले ११ पल के पात्र में १६ पल तैल से दीपदान करने पर ग्रहपीड़ा का निवारण होता है ।

द्वाविंशत्पलसङ्ख्याकं तैलं तत्र तदर्धकम् ।
चतुर्विंशतिसङ्ख्याकैस्तन्तुभिर्वर्तिका भवेत् ।। ४ ।।
मारणोच्चाटने चैव मानमेतत् प्रकीर्त्तितम् ।

२२ पल के पात्र में १६ पल तैल से २४ तन्तुओं की बत्ती बनाकर दीपदान करने से मारण, उच्चाटन आदि कार्य होते हैं ।

नृपपलमिते पात्रे उच्छ्रायं च रसाङ्गुलम् ।। ५ ।।

विंशतिपलमिते दीपे प्रत्यहं विंशतिर्दिनम् ।
सर्व-रोगविनाशाय क्षयापस्मार-दारुणे ।। ६ ।।

२० पल घृत से १६ पल के पात्र में, जिसकी ऊँचाई ६ अंगुल की हो, ऐसा दीप २० दिन अर्पित करने से क्षय और अपस्मार जैसे दारुण रोग भी नष्ट हो जाते हैं।

एकादशपले पात्रे उच्छ्रायं चैव पूर्ववत् ।
पञ्चविंशत्पले तैले दीपे भूतादिनाशनम्[1] ।। ७ ।।

६ अंगुल की ऊँचाई वाले ११ पल के पात्र में २५ पल तैल का दीप समर्पित करने से भूतबाधा नष्ट होती है।

त्रिंशत्पलमिते पात्रे प्रध्नोच्छ्राये तु पूर्ववत् ।
त्रिंशत्पलमिते तैले क्षुद्ररोगविनाशकृत् ।। ८ ।।

६ अंगुल की ऊँचाई वाले ३० पल के पात्र में ३० पल तैल का दीप अर्पित करने से क्षुद्र रोग नष्ट होते हैं।

त्रिंशत्पलमिते पात्रे मानं चैव तु पूर्ववत् ।
पञ्चाशत्पलं गव्यं (?) वश्ये चौर्य्यादिकर्मणि ।। ९ ।।

६ अंगुल की ऊँचाई वाले ३० पल के पात्र में ५० पल घृत का दीपदान करने से राजवश्य एवं चोरी की शान्ति होती है।

त्रिंशत्पलमिते पात्रे दिनान्येकोनविंशति ।
कन्याभिकांक्षी तैलेन प्रत्यहं दीपमाचरेत् ।। १० ।।
ईप्सितां लभते कन्यां-भैरवस्य प्रसादतः ।

---

१. यहीं एक पंक्ति और है—

एकादशपलैः पात्रे भूतोपद्रव-नाशनम् ।

ग्यारह पल से बनाए गए पात्र में दीपदान करने से भूतादि के उपद्रव नष्ट होते हैं। (सर्वजन वशीकरण के लिए भी इसका सूचन है)।

३० पल के पात्र में १६ दिन तक प्रतिदिन तैल का दीपदान करने से कन्याप्राप्ति के इच्छुक को श्रीभैरव की कृपा से इच्छित कन्या प्राप्त होती है।

षष्टि-पलमिते पात्रे ब्रध्नोच्छ्राये नवाङ्गुलम् ॥ ११ ॥
अङ्गुलानि चतुर्विंशत्यायामे परिकल्पयेत् ।
पञ्चसप्तमिते तैले सर्वशत्रुविनाशनम् ॥ १२ ॥

६ अंगुल की ऊँचाई वाले ६० पल के तथा १४ अंगुल चौड़े पात्र में ७५ बत्तियों वाला दीपक जलाने से सर्वशत्रुओं का नाश होता है।

द्विपञ्चाशत्पले पात्रे ब्रध्नोच्छ्राये तु षष्टिवत् ।
शतपलमिते तैले दीपाद् वैरिविनाशनम् ॥ १३ ॥

६ अंगुल की ऊँचाई वाले, ५२ पल के पात्र में १०० पल तैल भर कर दीपदान करने से शत्रुनाश होता है।

शतपलमिते पात्रे ब्रध्नोच्छ्राये तु षोडश ।
आयामं तु भवेत् सार्द्धं चतुर्विंशतिरङ्गुलैः ॥ १४ ॥
तन्मध्ये तु प्रकर्तव्यो दीपः शतत्रयात्मकः ।
सिंहव्याघ्रादिसर्पाणां भयं नैव प्रजायते ॥ १५ ॥

१६ अंगुल की ऊँचाई, २४ अंगुल चौड़े तथा सौ पल के भारवाले पात्र में ३०० बत्तियों का दीपक करने से सिंह, बाघ और सर्पादि का भय नष्ट होता है।

शतपलमिते पात्रे उच्छ्रायो द्वादशाङ्गुलम् ॥
द्वात्रिंशच्चैव आयामे तन्मध्ये तु सहस्रकम् ॥ १६ ॥

१२ अंगुल की ऊँचाई, ३२ अंगुल की चौड़ाई तथा १०० पल के भारवाले दीप में १०० बत्तियाँ जलाकर दीपदान करने से उत्तम बुद्धि और आरोग्य की वृद्धि होती है।

शतपलमिते दीपे मेधाऽऽरोग्यविवर्धनम् ।
सहस्रपलदीपे तु पात्रं शतपलं स्मृतम् ॥ १७ ॥

शत्रुगृहीतराज्यस्य पुनः प्राप्तिश्च सुन्दरि ।
सर्वकर्मणि सिद्धिः स्याद् दीपे पलसहस्रके । १८ ॥

१०० पल के पात्र में १००० पल घृत से दीपदान करने पर हे सुन्दरि ! शत्रु के द्वारा छीने गए राज्य की पुनः प्राप्ति होती है तथा सब कार्यों में सिद्धि प्राप्त होती है ।

सपादशतपात्रे च पञ्चोत्तरशताधिके ।
पञ्चदशाङ्गुलोच्छ्राय आयामे षट्त्रिंशके ॥ १९ ॥
अयुतपलदीपश्च निगडाद् बन्दिमुक्तये ।

१५ अंगुल की ऊँचाई तथा १०५ पल के भारवाले पात्र में दस हजार पल तैल से दीपदान करने पर कारागार से मुक्ति होती है ।

शतमष्टोत्तरं चाथ पलानि प्रथमे विधौ ॥ २० ॥
अष्टाशीतिर्द्वितीये च तथाष्टाविंशतिः प्रिये ।
सर्वकार्येषु देवेशि ! संख्या प्रोक्ता त्रिधाऽत्र वै ॥ २१ ॥

हे देवेशि ! यहाँ सर्व कार्य की सिद्धि के लिए १०८ ८८ अथवा २८ इस प्रकार तीन तरह की बत्तियों की संख्या बताई गई है ।

———

नित्य दीप करने के लिए ३ पल का पात्र, १ पल अथवा ३ पल घृत तथा २१ तन्तुों की बत्ती उत्तम मानी गई है ।

उपर्युक्त सभी बातों को सूत्र रूप में अन्यत्र इस प्रकार बतलाया गया है—

दीपपात्र निर्माण वस्तु-विचार

महत्कार्ये सौवर्णम् । वश्ये राजतम् । क्वचित् ताम्रमपि विद्वेषणे कांस्यम् । मारणे लोहम् । उच्चाटने मृण्मयम् । विवादे गोधूमपिष्टजम् । मुखस्तम्भे माषपिष्टजम् । शान्तौ मौद्गम् । सन्धौ नदीकूलद्वयमृदा । सर्वालाभे ताम्रमेव वा कुर्यात् ।

महान् कार्य की सिद्धि के लिए सुवर्ण का, वशीकरण में चाँदी का अथवा ताम्र का, विद्वेषण में कांसे का, मारण में लोहे का, उच्चाटन में मिट्टी का, विवाद में गेहूँ के आटे का, मुख-स्तम्भन में माष के चूर्ण का, शान्ति में मूँग के चूर्ण का, सन्धि में नदी के दोनों किनारों की मिट्टी का तथा उपर्युक्त वस्तुओं का अभाव रहने पर ताम्र का दीप-पात्र बनाना चाहिए।

पात्र-रचना-प्रकार—

पात्रघट्टने तु द्रव्यमानेन गौरवलाघवो न्याय्यः। कञ्चन एकमंशं परिकल्प्य तदादि षड्भिस्तैस्तन्मूलं रचयेत् षोडशभिरायतं वर्तुलं कुर्यात्। षड्भिर्भूमेरुन्नतम्। तच्च मूलेन षडङ्गुलं विस्तृतं षडङ्गुलोच्चम्। उपरि षोडशाङ्गुलाऽऽयामं दीपपात्र कुर्यात्। मूले द्वादश-दशाष्टषट्पञ्चतुस्त्र्यङ्गुलमिति केचित्।

पात्र की रचना में उसमें द्रव्य के मान से गुरुता और लघुता का निर्णय करना चाहिए। (अपनी अपेक्षा के अनुसार किसी एक अंश को कल्पना करके उसके छह अंश की गहराई, १६ अंश की गोलाई, छह अंगुल की ऊँचाई और ऊपर से १६ अंगुल की चौड़ाई वाला दीप-पात्र बनाना चाहिए। कुछ आचार्यों का मत है कि मूल की गहराई क्रमशः १२, १० ८, ६, ५, ४ और ३ अंगुल के आधार पर होनी चाहिए।

घृत-तैल के तोल की दृष्टि से पात्र का भार

तच्चायुतपलघृते पञ्चशतपलम् सहस्रत्रयपले सपादशतपलम् (१२५)। सहस्रद्वये पंचदशाधिकशतपलं (११५)। सहस्रे शतपलं (१००)। शतत्रयेपि शतपलमेव। शते पले द्विपञ्चाशत्पलम् (५२)। पादोनशतपले षष्टिपलम् (६०)। शतार्धपले त्रिंशत्पलम् (३०)। त्रिंशत्पले विंशत्पलम् (२०) विंशतिपले षोडशपलम् (१६) दशपले दशपलम् (१०)। प्रमाणाऽनुक्तौ एकादशपलम् (११)। नित्यदीपे तु त्रिपलम्।

घृत अथवा तैल यदि १०,००० पल हो तो ५०० पल का पात्र, ३००० पल हो तो १२५ पल, २००० पल होने पर ११५ पल, १००० अथवा ३०० पल होने पर १०० पल, १०० पल होने पर ५२ पल, ७५ पल होने पर ६० पल, ५० पल होने पर ३० पल, ३० पल होने पर २० पल, २० पल होने पर ११ पल, १० पल होने पर २ पल, जहाँ प्रमाण नहीं बताया हो वहाँ ११ पल तथा नित्य पूजन में ३ पल का दीपपात्र होना चाहिए।

घृत एवं तेल के दीपक के फल तथा तौल का विचार

तत्र गोघृते सर्वसिद्धिः। मारणे माहिषम्ः। विद्वेषणे औष्ट्रम्। शान्तिके आविकम्। उच्चाटने अजाम्। सर्वार्थसिद्धौ तिलतैलम्। मारणे सार्षपम्। मुखरोगे मुखदुर्गन्धे वा पुष्पवासिततैलम्। कामनाभेदेन द्रव्यमानम्॥ राज्यप्राप्तये दशसहस्रपलानि। निगडबन्धमोक्षे त्रिसहस्रम् द्विसहस्रमेकसहस्रं वा। नष्टवस्तुप्राप्त्यै एकसहस्रम्। सर्वकार्यसिद्धौ च एकसहस्रम्। सिंहव्याघ्रसर्पादिशान्त्यै त्रिशतम्। शत्रुनाशे शतम्। शत्रुपराजये पादोनशतम्। वश्ये सन्धौ चौरभयशान्त्यै च पञ्चाशत्पलम्। कन्याप्राप्त्यै एक-विंशतिदिन-पर्यन्तं प्रत्यहं त्रिशत्पलम्। रोगनिवृत्तये चतुर्दशदिनपर्यन्तं प्रत्यहं त्रिशत्पलम् क्षुद्ररोगे सकृदेव त्रिशत्पलम्। चौरनाशे विंशतिपलम्। भूत-प्रेत-पिशाचनिवृत्त्यै पञ्चविंशतिपलम्। ग्रहपीडायां षोडशपलम्। राजवश्ये सप्तदिवसपर्यन्तं प्रत्यहं दशपलम्। प्रयाणकालेऽष्टपलम्। नित्यदीपे पलं पलार्धं वा गव्यं माहिषं वा ग्राह्यम्। न न्यूनम्। तैलेऽप्येवम्। धनप्राप्त्यादौ अनुक्तमाने सर्वत्र शतपलं ज्ञेयम्। कृते दीपे न सिध्येत् चेद् वारत्रयं कुर्यात्।

गौ का घृत सर्वसिद्धिकारक है। मारण में भैंस के दूध का घृत। विद्वेषण में ऊँटनी के दूध का। शान्ति में भेड़ के दूध का, उच्चाटन में बकरी के दूध का, सर्वार्थ-सिद्धि में तिल का तैल, मारण में सरसों का

तथा मुखरोग अथवा मुख की दुर्गन्ध होने पर फूलों से बने हुए तैल का दीप जलाना चाहिए।

कामना के भेद से घी या तैल का तौल

राज्य-प्राप्ति के लिए दस हजार पल। कैद से छूटने के लिए तीन हजार पल अथवा २ हजार पल। नष्ट वस्तु प्राप्ति के लिए १००० पल। सर्वकार्य-सिद्धि के लिए १००० पल। सिंह, बाघ और सर्पादि की शान्ति के लिए ३०० पल। शत्रुनाश के लिए २०० पल। शत्रुपराजय के लिए ७५ पल। वश्य, सन्धि और चोर के भय की शान्ति के लिए ५० पल। कन्या प्राप्ति के लिए १२ दिन तक प्रतिदिन ३० पल। रोग निवृत्ति के लिए १४ दिन तक प्रतिदिन ३० पल। सामान्य रोगनाश के लिए एक बार ही में ३० पल। चौरनाश में २० पल। भूत, प्रेत एवं पिशाच-निवृत्ति के लिए २५ पल। ग्रहपीड़ा-निवृत्ति के लिए १३ पल। राजवशीकरण के लिए सात दिन तक प्रतिदिन १० पल, कहीं प्रस्थान करना हो तो ८ पल तथा नित्य पूजा के दीप में १ पल अथवा आधा पल गौ या भैंस का घी लेना चाहिए। इससे कम न हो। तैल का दीपक हो, तो उसका भी यह विधान है। धन प्राप्ति आदि अन्य कार्यों के लिए जिसका तौल नहीं बताया गया है वहाँ १०० पल जानना चाहिए। इस प्रकार दीपदान करने पर भी सिद्धि न हो, तो तीन बार दीपदान करे।

बत्ती बनाने की विधि

तत्र त्रिः प्रक्षालितेन सूत्रेण वश्य-विद्वेषण- मारणोच्चाटन-स्तम्भन-शान्तिषु क्रमेण सितपीत-माञ्जिष्ठ-कौसुम्भ-कृष्ण-कर्बुर-वर्णेन-तदलाभे सर्वत्र श्वेतेनैवसूत्रेण कार्या। तत्र पञ्चदश-विंशत्-त्रिंशच्चत्वारिंशत्-पञ्चाशदाष्टोतरशताष्टोत्तरसहस्रान्यतमसंख्यकास्तन्तुकाः। एक-त्रि-पञ्च सप्ताद्येकोत्तरशतपर्यन्तं विषमसंख्यावर्तीः पात्रे क्षिपेत्।

नित्यदीपे तु द्विचत्वारिंशदेकविंशतितन्तुभिर्वा विषमसंख्यावर्तीः पात्रे क्षिपेत् ।

ये दोपक की बत्तियाँ सूत या डोरे की बनती हैं। डोरे को तीन बार धोकर क्रमशः वशीकरण में श्वेत, विद्वेषण में पीत, मारण में हरा (मजीठ के समान), उच्चाटन में कुसुम्बी (केसरिया लाल), स्तम्भन में काला और शान्ति में चितकबरा रंग लें तथा ये रंग न मिलें तो सफेद सूत से बत्ती बनाएँ। फिर उन सूत के १५, २०, ३०, ४०, ५०, १०८ अथवा १००० तन्तुओं की बत्ती बनाएँ। ये तन्तु इकाई की संख्या में होने चाहिए नित्यदीप में ४२, २१ अथवा विषम संख्या वाली बत्ती होनी चाहिए।

बत्ती चलाने के लिए शलाका

षोडशाङ्गुलमाना च सौवर्णी तु शलाकिका ।
राजतौदुम्बरी वाऽपि सुलक्षा ब्रध्नका तथा ।।
तीक्ष्णाग्रा सरला मध्ये त्रिशूलेनाङ्किता तथा ।

१६ अंगुल लम्बी सुवर्ण, चाँदी अथवा उदुम्बर (उमर) की उत्तम दिखने वाली, सीधी, आगे से तीखी, मध्य में त्रिशूल से अंकित तथा मूल में स्थूल बत्ती चलाने की सलाई बनाएं। (कहीं-कहीं ८ अंगुल का भी सूचन है)। इस शलाका को पात्र के दाहिने भाग में रखें।

दीपस्थापना के लिए घटार्गल यन्त्र[1]

इस यन्त्र का स्वरूप वर्णमाला एवं कुछ बीज-मन्त्रों के लेखन से चक्राकार में तैयार किया जाता है और वही कलश के नीचे भी रखा जाता है। इसके अभाव में दीपक के नीचे त्रिकोण, वृत्त और षट्कोण

१. इस यन्त्र का स्वरूप-परिचय 'शारदातिलक' के ६वें पटल के ६५वें श्लोक में देखिए।

बानकर, उस पर अक्षत चढ़ाकर दीपस्थापन करे।

दीपक का मुख विचार

पूर्वाभिमुखे सर्वाप्तिः स्तम्भोच्चाटनयोस्तथा।
रक्षाविद्वेषयोः कार्ये पश्चिमास्यं प्रदीपकम्॥
लक्ष्मीप्राप्तावुत्तरस्यं मारणे दक्षिणामुखम्।

पूर्वदिशा में दीपक का मुख रखने से सर्वसुख की प्राप्ति होती है। स्तम्भन, उच्चाटन रक्षण तथा विद्वेषण में पश्चिम दिशा की ओर दीपक का मुख रखना चाहिए। लक्ष्मी-प्राप्ति के लिए उत्तराभिमुख तथा मारण में दक्षिणाभिमुख दीपक रखना चाहिए।

दीपशकुन विचार

डामरतन्त्र में दीपस्थापना के समय विविधरूप के शकुनों का ज्ञान दिया गया है, जिनमें कहा गया है कि—'दीपस्थापना के समय' अशुभ न बोलें। ब्राह्मण का आगमन शुभ है। म्लेच्छ, बिल्ली अथवा चूहे का आना अशुभ है। इसी प्रकार दीप की ज्वाला यदि सीधी और शुद्ध हो, तो उत्तम है। तिरछी, धुएँ से युक्त, काली, चटचट शब्द करनेवाली, तत्काल बुझ जाने पर तथा दीपपात्र के ढुलक जाने पर अथवा घृत या तैल के झर जाने को अशुभ कहा गया है। अतः सावधानी से यह कार्य करें। यदि उपर्युक्त अशुभ फलदायी बात हो जाए, तो उसकी शान्ति के लिए जप अथवा हवन का भी विधान है।

नैवेद्य—अन्न, फल तथा अन्य रसीले पदार्थों से इष्टदेव को जो भोज्य-पदार्थ समर्पित किए जाते हैं, उन्हें नैवेद्य कहा जाता है। इसी भोज्य-सामग्री को काम्यकर्मों के आधार पर देवताओं के प्रिय पदार्थ को ध्यान में रखकर अर्पित करने की प्रक्रिया तन्त्रों में निर्दिष्ट है। इसी समय अन्यान्य देवताओं को बलि के रूप में जो द्रव्य अर्पित किया जाता है वह भी भोज्य-पदार्थ ही रखा जाता है। सात्विक उपासना

में प्रधान देवता के लिए (पायस) तथा अन्य देवताओं के लिए खिचड़ी से बलि देना शास्त्र-विहित है। कहीं-कहीं माष, दही और सिन्दूर मिलाकर भी बलिकर्म किया जाता है।

आरती—दीपक के अतिरिक्त कपूर अथवा घृत के दीप से इष्ट-देव को आरती का विधान है। इसमें तान्त्रिक दृष्टि से दो बातें प्रमुख रूप से ध्यान में रखनी चाहिए कि कर्मानुसार बत्तियों की संख्या और आरती घुमाने के बारे में प्रकार विशेष का जैसा निर्देश हो, उसका पालन अवश्य करे। सृष्टि, स्थिति और संहार क्रम से देवता के समक्ष आरती घुमाई जाती है और प्रधान देव के समक्ष उनके बीज मन्त्रों की आकृति आरती को घुमाकर बनाई जाती है।

तान्त्रिक-कर्म-परिचय

हम यह बतला चुके हैं कि तन्त्र शास्त्र का क्षेत्र पर्याप्त विस्तृत है और यही कारण है कि इसकी ग्रन्थ-सम्पदा भी बहुत विशाल है। यदि हम इसका वर्गीकरण करें, तो तीन भागों में तान्त्रिक कर्मों को बाँट सकते हैं। **पहला भाग**—अध्यात्म एवं प्रमुख देवोपासना के निर्देशक कर्म। **दूसरा भाग**—सांसारिक विषयों की सिद्धि के साथ-साथ पारमार्थिक तत्त्वों की सिद्धि देनेवाले कर्म। तथा **तीसरा भाग**—केवल लौकिक कार्यों की सिद्धि देने वाले कर्म। इन तीनों प्रकार के कर्मों में अधिकारी की दृष्टि से विचार करने पर स्पष्ट होता है कि उत्तम मध्यम तथा साधारण कोटि के साधकों के लिए यह व्यवस्था है।

प्रस्तुत ग्रन्थ प्रायः मध्यम एवं साधारण साधकों को दृष्टि में रख कर लिखा जा रहा है, अतः द्वितीय एवं तृतीय भाग के कर्मों का ही संग्रह यहाँ दिया गया है। तन्त्रग्रन्थों में इस विषय में ९ कर्मों का संकेत दिया है। ये हैं—(१) मारण, (२) मोहन, (३) स्तम्भन, विद्वेषण (४) उच्चाटन, (५) वशीकरण, (६) आकर्षण, (७) इन्द्रजाल, (८) यक्षिणी-साधन और (९) रसायन कर्म। इनके अतिरिक्त कुछ कर्मों का संकेत

'दत्तात्रेय-तन्त्र' में भी दिया गया है, जिनमें—(१) जयवाद, (२) बाजीकरण, (३) भूतग्रहों का निवारण, (४) हिंसकपशुभय-निवारण, (५) विषप्रतीकार आते हैं।

ऐसे तन्त्रों के प्रयोग बड़ी सावधानी से करने चाहिए; अन्यथा वे विपरीत फल देते हैं। कहा गया है कि—

मूर्खेणतु कृते तन्त्रे स्वस्मिन्नेव समापयेत्।

अर्थात, मूर्ख (असावधान अथवा अकारण द्वेषी) द्वारा किया गया तन्त्र-प्रयोग अपने को (स्वयं प्रयोग-कर्ता को) ही समाप्त कर देता है। इसलिए मारण जैसे कर्म तो कदापि नहीं करने चाहिए और जहाँ तक सम्भव हो, कल्याणकारी साधना में ही प्रवृत्त होना उत्तम है।

इसके साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जो लोकोपकार अथवा रोगादि से छुड़ानेवाले तन्त्र कर्म हैं, उन्हें करने में संकोच नहीं करना चाहिए तथा उस कार्य के लिए अनावश्यक रूप से धन-लाभ नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से कर्म सफल नहीं होता।

लौकिक तन्त्रों में शास्त्रीयता के साथ-साथ जनमानस पर प्रभाव डालने तथा उसकी संगति से आत्मविश्वास जगाने के लिए कई प्रयोग देखने में आते हैं, जिन्हें ओझा, उपाध्याय नाम से ख्याति-प्राप्त व्यक्ति करते हैं और उनसे पूर्ण सफलता होती है। ऐसे कर्मों में कुछ प्रसिद्ध इस प्रकार हैं—

(१) **अभिषेक**—मन्त्रों द्वारा जल को अभिमन्त्रित करके उससे स्नान कराना, डाभ, दूर्वा आदि से छींटे देना और उसे पिलाना ये तीन बातें अभिषेक में समाविष्ट हैं।

(२) **कङ्कण-कवच**—सोना, चांदी, तांबा लोहा आदि धातुओं से कड़ा बनाकर उसे अभिमन्त्रित करके पहनाया जाता है। अथवा रेशमी डोरा, कच्चा सूत, काला डोरा आदि को शरीर के आकार से नापकर उसमें गाँठें लगाकर कङ्कण या गले का डोरा तैयार किया जाता है।

(३) **पट्ट**—कपड़े के किसी भाग को लेकर उस पर यन्त्र लिखते हैं तथा विजय-यात्रा, मंगल-प्रस्थान आदि के समय सिर अथवा भुजा पर 'जयपट्ट' के रूप में बाँध लेते हैं। ध्वजा में भी यन्त्र लिखे जाते हैं।

(४) **अन्य धारण करने योग्य वस्तुएँ**—देह-रक्षा और कार्यसिद्धि के लिए यन्त्र, रत्न, औषधि, कवच, फल, विशिष्ट वस्तुएँ, जैसे कौड़ियाँ, शंख, रुद्राक्ष, श्वेताङ्कुर, दाँत, नख, रोम, चर्म, धातुनिर्मित महत्त्वपूर्ण वस्तुएँ, दिव्य वृक्षों के बीज, अभिमन्त्रित पदार्थ आदि।

(५) **लेपन और अंजन**—कार्य-सिद्धि के लिए तान्त्रिक दृष्टि से मस्तक पर चन्दन, पैरों में लेप तथा आँखों में अंजन लगाया जाता है। जिनके लिए मन्त्र-प्रयोगपूर्वक विविध औषधियों का उपयोग अपेक्षित है।

(६) **पिच्छक**—सामान्यतः सिद्ध मन्त्रों द्वारा रोगी पर मन्त्र पढ़ते हुए झाड़ने की प्रक्रिया हमारे यहाँ बहुत प्रचलित है। इनमें फूँक मारना, राख मलना, पानी के छींटें देना, सरसों, राई और काली मिर्च उतारना, लाल मिर्च, राल, गूगल आदि की धूप देना, नीम की डाली, गीला वस्त्र और पंख अथवा उल्लू आदि पक्षियों के पंखों का प्रयोग होता है। ब्रह्मयामल-तन्त्र में पिच्छक बनाने का विधान इस प्रकार है—

षड्विंशत्या चतुःषष्ट्या शतेनाष्टोत्तरेण वा।
मयूरोलूक-पक्षाणां तन्मानं ग्रन्थिपिच्छका॥
ग्रहणे मुक्तिपर्यन्तं रक्तसूत्रेण वेष्टयेत्॥
इष्टमन्त्रं जपेत्, सत्यं सिद्धं रणेऽरिनाशनम्॥

२६, ६४ अथवा १०८ मयूर या उल्लू के पंखों को लेकर उनका गुच्छा तैयार करें और उस पर लाल डोरा (मौलि) बाँधे। फिर सूर्य अथवा चन्द्र-ग्रहण में आरम्भ से अन्त तक इष्टमन्त्र का जप करता रहे और लाल डोरे में गाँठ लगाकर पिच्छक तैयार करे। ऐसे करने पर

पिच्छक सिद्ध हो जाता है और उसके द्वारा अनेक कार्य सिद्ध होते हैं। भैरव, हनुमान और देवी के स्थान पर ऐसे पिच्छक रहते हैं। इसी प्रकार फकीर लोग भी धूपदान और पिच्छक रखते हैं।

कीले गाड़ना—कुछ स्थानों पर प्रेतों का निवास हो जाता है और वे प्रायः वहाँ रहने वालों को सताया करते हैं। ऐसे स्थानों के चारों ओर दीप जलाकर कन्या द्वारा काते गए सूत को लपेटते और मन्त्रजप द्वारा अभिमन्त्रित कीले गाड़े जाते हैं। ये कीले लोहे के अथवा खेर की लकड़ी के बनते हैं।

पताकाएँ—हम देखते हैं कि मन्दिर के शिखरों पर तथा कुछ भवनों पर ध्वजा-पताकाएँ लगाई जाती हैं। इन पर कुछ आकृतियाँ, यन्त्र तथा प्रतीक बनाए जाते हैं। प्राचीन काल में विजय-यात्रा में अभिमन्त्रित पताका लगाने का बड़ा विधान था। ये पताकाएँ छोटी, बड़ी, रंग-बिरंगी त्रिकोणी और चौकोनी बनाकर मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित करके लगाने से विघ्न-निवारण होता है तथा प्रेतादि की बाधा दूर होती है।

इन सब वस्तुओं के अतिरिक्त भी लोकाचार के अनुसार अनेक वस्तुएँ ऐसी हैं जिनका यहाँ वर्णन किया जा सकता है; किन्तु विस्तार-भय से संक्षिप्त निर्देशन किया गया है।

विशेष निवेदन

भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है कि—

नहि कल्याणकृत्, कश्चिद् दुर्गतिं तात ! गच्छति।

अर्थात् जो कल्याणकारी कर्म करता है, वह दुर्गति को प्राप्त नहीं होता। यह प्रवाद जनसाधारण में बहुत प्रचलित है कि मन्त्र, तन्त्र, जादू-टोना करने वाले व्यक्तियों की अन्त में दुर्गति होती है। किन्तु इसके मूल कारण पर कोई विचार नहीं करता है कि ऐसा क्यों होता

है, किसको होता है ?

वास्तविकता यह है कि तान्त्रिक प्रयोग तत्काल फल देनेवाले होते हैं उनमें भी अनिष्टकर्म शीघ्र सफल हो जाते हैं। जो लोग सामान्य लोभ में पड़कर एक-दूसरे के द्वेषवश मारण, उच्चाटन, विद्वेषण जैसे प्रयोग कर देते हैं अथवा पुतले बनाकर या मूठ आदि चला कर कष्ट पहुँचाते हैं, वे दुखी-दरिद्रियों की हाय के कारण दुर्गति को प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार जो लोग प्रारम्भ में साधना करके देव-देवियों, यक्ष-यक्षणियों को प्रसन्न कर लेते हैं और बाद में उनके माध्यम से अनैतिक कर्म में लग जाते हैं, वे दुर्गति के भागी होते हैं। ऐसे लोगों के खान-पान में मांस, मदिरा, हिंसा आदि का भी बोल-बाला रहता है। अतः सत्कर्म की ओर उनकी प्रवृत्ति ही नहीं होती। दया-दाक्षिण्य को वे बिलकुल छोड़ देते हैं, जिसका परिणाम अच्छा नहीं होता।

अतः तन्त्र-मार्ग में प्रवेश करने वाले प्रत्येक साधक को चाहिए कि वह ऐसे ही तान्त्रिक कर्म करे, जिनसे लोक-कल्याण की साधना हो और रोग-शोक से पीड़ित व्यक्ति सुखी और सम्पन्न बनें। ऐसे कार्य में निर्लोभ-भावना से यदि कार्य किया जाए, तो सफलता अवश्य मिलती है और ईश्वरकृपा से प्रयोगकर्ता को किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता।

धन्यं तन्त्रविधानमन्त्र सकलाः सन्ति क्रिया निर्मलभाषां पालनतो भवन्ति सफला वाञ्छा जनानां क्षिन्नौ शास्त्राचार समन्वितं शुभकरं तस्मादिदं साधनां, सत्ये वर्मनिवर्ततां च सततं हे तान्त्रिकाः साधकाः।

२

प्रयोग-विभाग

१ | नित्यकर्म-प्रयोग

यह नितान्त सत्य है कि जो जिस मार्ग का अनुसरण करता है उसे उस मार्ग में सफलतापूर्वक चलकर लक्ष्य तक पहुँचने के सभी नियमों को जान लेना तथा उनका पूर्णरूपेण पालन करना चाहिए। इस दृष्टि से तन्त्रकर्म में सफलता प्राप्त करने के लिए स्नान-सन्ध्याशील होना अत्यावश्यक है। हमने **'मन्त्रशक्ति'** ग्रन्थ में मन्त्र साधन से सम्बन्धित **'सर्वमन्त्र-जपविधि'** के अन्तर्गत अनेक बातें बताई हैं। पाठकों ने उसे बहुत पसन्द किया, किन्तु उनका आग्रह था कि उसमें स्नानादि से लेकर सन्ध्या तक के कर्मों का भी सामान्य दिग्दर्शन होना चाहिए था। अतः यहाँ उसे हम प्रकाशित कर रहे हैं।

संक्षिप्त नित्य कर्म-विधि[1]

प्रातः कृत्य

(शय्या पर भी किया जा सकता है।)

सूर्योदय से प्रायः २ घण्टे पूर्व ब्रह्म-मुहूर्त होता है। इस समय सोना निषिद्ध है। इस कारण ब्रह्म-मुहूर्त में उठकर आगे लिखा मन्त्र बोलते हुए अपने हाथ देखें।

---

१. शास्त्रों में **'नित्य कर्म विधि'** का बड़ा विस्तार से वर्णन है। सामान्य पठित व्यक्तियों के लिए हमने यहां उसे संक्षेप में संगृहीत किया है। विस्तृत जानकारी के लिए मूल विधि के ग्रन्थ देखें।—लेखक

कराग्रे बसते लक्ष्मीः, करमध्ये सरस्वती।
करमूले स्थितो ब्रह्मा, प्रभाते कर-दर्शनम् ॥

हाथों के अग्रभाग में लक्ष्मी, मध्य में सरस्वती और मूल में ब्रह्मा स्थित है। अतः सुबह (उठते ही) हाथों का दर्शन करें। पश्चात् नीचे लिखी प्रार्थना कर पृथ्वी पर पैर रखें।

समुद्रवसने देवि ! पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नि ! नमस्तुभ्यं, पादस्पर्श क्षमस्व में ॥

हे विष्णु पत्नी ! हे समुद्ररूपी वस्त्रों को धारण करनेवाली तथा पर्वतरूप स्तनों से युक्त पृथ्वी देवी ! तुझे नमस्कार है मेरे पाद-स्पर्श को क्षमा करो।

पश्चात् मुख धोकर, कुल्ला करके नीचे लिखे 'प्रातः स्मरण' तथा भजनादि करके गणेशजी, लक्ष्मीजी, सूर्य, तुलसी, गौ, गुरु, माता, पिता, इष्टदेव और वृद्धों को प्रणाम करें।

प्रातः स्मरण

उमा उषा च वैदेही रमा गंगेति पञ्चकम्।
प्रातरेव स्मरेन्नित्यं सौभाग्यं वर्द्धते सदा ॥
सर्वमंगलमांगल्ये ! शिवे ! सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये ! त्र्यम्बके ! गौरि नारायणि ! नमोऽस्तु ते ॥
हे जिह्वे रससराज्ञे ! सर्वदा मधुरप्रिये !।
नारायणाख्यपीयूषं पिब जिह्वे ! निरन्तरम् ॥

शौच विधि

यज्ञोपवीत को कण्ठी कर दाहिने कान में लपेटकर वस्त्र या आधी धोती से सिर ढकें। वस्त्र के अभाव में जनेऊ को सिर के ऊपर से लेकर बायें कान के पीछे करें। जल-पात्र बायें रख दिन में उत्तर तथा रात्रि में दक्षिण को ओर मुख कर नीचे लिखा मन्त्र बोलकर मौन हो मल-मूत्र त्याग करें।

गच्छन्तु ऋषयो देवाः, पिशाचा ये च गुह्यकाः।
पितृभूतगणाः सर्वे, करिष्ये मलमोचनम् ॥

पात्र से जल ले, बायें हाथ से गुदा धोकर पश्चात् लिंग में एक बार, गुदा में तीन बार मिट्टी लगाकर जल से शुद्ध करें। बायें हाथ को अलग रखते हुए दाहिने हाथ से लाँग (पिछटा) टाँगकर उसी हाथ में पात्र ले मिट्टी के तीन भाग करें। प्रथम से बायाँ हाथ दस बार, दूसरे से दोनों हाथ सात बार और तीसरे से पात्र तीन बार शुद्ध करें (उसी पात्र से १२-१६ कुल्ला करें)। बायाँ पैर तथा दाहिना पैर तीन-तीन बार धोकर बची हुई मिट्टी धो देवें। सूर्योदय से पहले पूर्व एवं पश्चात् उत्तर की ओर मुख कर १२ कुल्ला करें।

दिन से रात्रि में आधी, यात्रा में चौथाई तथा आतुरकाल में यथा-शक्ति शुद्धि करनी चाहिए।

मल-त्याग के बाद १२, मूत्र के बाद ४ और भोजन के बाद १६ कुल्ला करें।

दन्तधावन-विधि

मुखशुद्धि किए बिना मन्त्र फलदायक नहीं होते। इसलिए सूर्योदय से पहिले पूर्व पश्चात् उत्तर अथवा दोनों समय ईशान (पूर्वोत्तर कोण) में मुख कर दतुअन करना चाहिए। मध्यमा, अनामिका अथवा अंगुष्ट से दाँत साफ करें, तर्जनी अंगुली से कभी न करें।

दतुअन प्रार्थना

आयुर्बलं यशो वर्चः, प्रजाः पशुवसूनि च।
ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च, त्वन्नो देहि वनस्पते ॥

दूध वाले वृक्ष का १२ अंगुल का दतुअन धोकर उपर्युक्त प्रार्थना पूर्वक करें। पश्चात् दतुअन को चीरकर जीभी करें और धोकर बाईं ओर फेंक दें।

संकल्प

स्नान, दान, देवपूजन आदि के आरम्भ में संकल्प करना चाहिए। दाएँ हाथ में केवल जल या जल-पुष्प आदि ले, नीचे लिखे संकल्प में (अमुक) के स्थान पर उसके बाद जो शब्द है उसका विशेष नाम पंचांग आदि में देखकर बोलना चाहिए।

ब्राह्मण नाम के अन्त में 'शर्मा', क्षत्रिय 'वर्मा' वैश्य 'गुप्त' और शूद्र 'दास' कहें। श्राद्ध-तर्पणादि में भी पितरों के नाम के अन्त में इसी प्रकार बोलें।

ॐ तत्सदद्य श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य ब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे सप्तमे वैवस्वत-मन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलिप्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भरत-खण्डे बौद्धावतारे आर्यावर्तैकदेशान्तर्गते (अमुक) देशे (अमुक) पुण्यक्षेत्रे (अमुक) ग्रामे- विक्रमसंवत्सरे (अमुक) संख्यके, शालिवाहनशके (अमुक) संख्यके (अमुक) नाम्नि सम्वत्सरे (अमुक) अयने (अमुक) ऋतौ, (अमुक) मासे (अमुक) पक्षे (अमुक) तिथौ (अमुक) वासरे, (अमुक) नक्षत्रे (अमुक) गोत्रोत्पन्नः (अमुक) नामाहं मम कायिक-वाचिक-मानसिक-ज्ञाताज्ञात-सकलदोष-परिहारार्थं श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफल-प्राप्त्यर्थं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं (अमुक) काले (अमुक) सम्मुखे (अमुक) कर्म करिष्ये।

कहकर जलादि छोड़ें (यजमान के लिए करें तो यजमान का षष्ठंत गोत्र तथा नाम उच्चारण करें और अन्त में 'करिष्यामि' कहें)

स्नान-विधि

मनुष्य के शरीर में प्रधान ९ छिद्र हैं। वे रात्रि में शयन करने से अपवित्र हो जाते हैं। इसलिए प्रातः स्नान अवश्य करें। गंगाजी में दतुअन न करें। स्नान के पश्चात् गंगाजी में भीगी धोती नहीं बदलें और न निचोड़ें।

नीचे लिखे मन्त्र से वरुण की प्रार्थना करें—

अपामधिपतिस्त्वं च, तीर्थेषु वसतिस्तव।
वरुणाय नमस्तुभ्यं, स्नानानुज्ञां प्रयच्छ मे।

पवित्र हो, स्नानार्थ संकल्प कर नीचे लिखे मन्त्र से मृत्तिका लगायें। कटि के नीचे दाहिने हाथ तथा मन्त्र से न लगाएँ।

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते! विष्णुक्रान्ते! वसुन्धरे।
मृत्तिके! हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्॥

तीर्थावाहन

पुष्कराद्यानि तीर्थानि, गङ्गाद्याः सरितस्तथा।
आगच्छन्तु पवित्राणि, स्नानकाले सदा मम॥

भागीरथी गंगाजी की प्रार्थना

विष्णुपादाब्जसम्भूते! गंगे! त्रिपथगामिनि।
धर्मद्रवेति विख्याते! पापं में हर जाह्नवि!॥

नाभि पर्यन्त जल में जाकर प्रवाह या सूर्य की ओर मुख करें तथा जल के ऊपर ब्रह्महत्या रहती है, इसलिए जल हिलाकर तीन गोते लगाकर स्नान करें। यथेच्छ स्नान कर चुकने पर नीचे लिखे मन्त्र से जल के बाहर एक अञ्जलि देवें—

यन्मया दूषितं तोयं, मलैः शरीरसम्भवैः।
तस्य पापस्य शुद्ध्यर्थं, यक्ष्माणं तर्पयाम्यहम्॥

घर में स्नान करें, तो 'पूर्वाभिमुख' हो, पात्र से जल लेकर वरुण और गंगा आदि तीर्थों का आवाहन और संकल्प कर पैर तथा मुख धोकर स्नान करें।

असमर्थ अवस्था में नीचे लिखी क्रिया करने से भी स्नान का फल होता है। मणिबन्ध (पहुँचे) हाथ तथा घुटनों तक पैर धोकर एवं पवित्र होकर दोनों घुटनों के भीतर हाथ करके आचमन करने से स्नान के

समान फल होता है। पुण्य-कार्यों में दो वस्त्र धारण करें। अभाव में आधी धोती ओढ़ें (धोती गाँठ लगाकर न पहिनें), नया या धुला हुआ वस्त्र पवित्र कर धारण करें।

यज्ञोपवीत-विधि

संकल्प कर दो यज्ञोपवीत धारण करें। यदि मल-मूत्र त्यागते समय यज्ञोपवीत कान में टाँगना भूल जावें, तो नया बदलें।

श्रावणी कर्म में पूजन किया हुआ न हो, तो नूतन यज्ञोपवीत को जल से शुद्ध कर दस बार गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित कर नीचे लिखे मन्त्रों से सूत्रों में देवताओं का आवाहन करें।

प्रथमतन्तौ-ॐ **कारमावाहयामि**। द्वितीयतन्तौ-ॐ **अग्निमावाहयामि** ! तृतीयतन्तौ ॐ **सर्पानावाहयामि**। चतुर्थतन्तौ-ॐ **सोममावाहयामि**। पञ्चमतन्तौ-ॐ **पितृनावाहयामि**। षष्ठतन्तौ-ॐ **प्रजापतिमावाहयामि**। सप्तमतन्तौ-ॐ **अनिलमावाहयामि**। अष्टमतन्तौ-ॐ **सूर्यमावाहयामि**। नवमतन्तौ-ॐ **विश्वान्देवानावाहयामि**। ग्रन्थिमध्ये-ॐ **ब्रह्मणे नमः ब्रह्माणमावाहयामि**। ॐ विष्णवे **नमः विष्णुमावाहयामि**। ॐ **रुद्राय नमः रुद्रमावाहयामि**।

इस प्रकार आवाहन करके गन्ध और अक्षत से आवाहित देवताओं की पूजा करें तथा नीचे लिखे मन्त्र से यज्ञोपवीत धारण का विनियोग करें।

ॐ यज्ञोपवीतमिति मन्त्रस्य परमेष्ठी ऋषिः लिंगोक्ता देवता त्रिष्टुप्छन्दो यज्ञोपवीतधारणे विनियोगः।

फिर जनेऊ धोकर प्रत्येक बार नीचे लिखा हुआ मंत्र बोलते हुए एक-एक कर धारण करें।

ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं, प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं, यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥

जीर्ण यज्ञोपवीत-त्याग का मन्त्र

पुराने जनेऊ को कण्ठीकर सिर पर से पीठ की आर निकालकर यथासंख्य गायत्रीं-मन्त्र का जप करना चाहिए।

> **एतावद्दिन-पर्यन्तं, ब्रह्मत्वं धारितं मया।**
> **जीर्णत्वात् त्वत्परित्यागो, गच्छ सूत्र! यथासुखम् ।।**

आसन

मृगछाला, कुशा और ऊन का आसन पवित्र होता है। आसन को स्वच्छ करके तथा कुशासन हो तो उसकी ग्रन्थि उत्तर दक्षिण करके बिछावें।

आचमन

केशवाय ॐ नमः स्वाहा। ॐ नारायणाय नमः स्वाहा।

ॐ माधवाय नमः स्वाहा (ये बोलते हुए तीन बार आचमन करें)।

पश्चात् अंगूठे के मूल से दो बार होंठों को पोंछकर '**ॐ गोविन्दाय नमः**' बोलकर हाथ धो लें। फिर बायें हाथ की हथेली में जल लेकर कुशा से, कुशा के अभाव में अनामिका और मध्यमा से मस्तक पर जल छिड़कते हुए निम्नांकित मन्त्र पढ़ें—

> **ॐ अपवित्रः पवित्रो वा, सर्वावस्थां गतोऽपि वा।**
> **यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं, स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ।।**

फिर नीचे लिखे मन्त्र से आसन पर जल छिड़ककर दाएँ हाथ से उसका स्पर्श करें—

> **ॐ पृथ्वि! त्वया धृता लोका, देवि त्वं विष्णुना धृता।**
> **त्वं च धारय मां देवि, पवित्रं कुरु चासनम् ।।**

शिखारहस्य

शिखा बाँधकर सभी कर्म करने चाहिएं, शास्त्रकारों ने भी शिखा (चोटी) आवश्यक मानी है और उसके कटवाने में प्रायश्चित्त कहा है। देखिए—

सदोपवीतिना भाव्यं, सदा बद्धशिखेन च ।
विशिखा व्युपीवतश्च, यत् करोति न तत् कृतम् ।।

संस्कार भास्कर में खल्वाट अवस्था में शिखा के न होने पर कुश की शिखा बनाने की आज्ञा देकर उसे अनिवार्य बताई है, इसे इन्द्रयोनि भी कहते हैं, योगी लोग इसे सुषुम्णा का मूल स्थान कहते हैं, वैद्य इसे मस्तु-मस्तिष्क कहते हैं, योगविद्या-विशारद ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं। यह विषय कृत्रिम नहीं है, किन्तु सच्चा तथा प्राकृतिक है, इस शिखा का परिमाण गोखुर कहा गया है।

शिखाबन्धन-मन्त्र

चिद्रूपिणि ! महामाये ! दिव्यतेजःसमन्विते ! ।
तिष्ठ देवि ! शिखामध्ये, तेजोवृद्धि कुरुष्व मे ।।

तिलक

तिलक किए बिना सन्ध्या, पितृकर्म और देव-पूजा आदि न करें। चन्दनादि के अभाव में जलादि से तिलक करें, तिलक करने में अनामिका शान्ति देने वाली, मध्यमा आयु बढ़ाने वाली, अंगुष्ठ-पुष्टि देने वाला और तर्जनी मोक्ष देने वाली है। चकले पर से चन्दन नहीं लगाना चाहिए।

चन्दन-धारण मन्त्र

चन्दनस्य महत्वपुण्यं, पाप-नाशनम् ।
आपदं हरते नित्यं, लक्ष्मीस्तिस्ठति सर्वदा ।।

तिलक-धारण-विधि

ललाट में केशव, कण्ठ में पुरुषोत्तम, हृदय में वैकुण्ठ, नाभि में नारायण, पीठ में पद्मनाभ, बायें पार्श्व (पसवाड़ा) में विष्णु, दाहिने पार्श्व में वामन, बायें कान में यमुना, दाहिने कान में गंगा; बाईं भुजा में कृष्ण, दाहिनी में हरि, मस्तक में ऋषिकेश और गर्दन में दामोदर

का स्मरण करते हुए इन तेरह स्थानों में चन्दन लगावें।

भस्म-धारण-विधि

प्रातः जल मिश्रित, मध्याह्न में चन्दन मिश्रित और सायंकाल में सूखी भस्म लगावें। बाएँ हाथ में भस्म ले दाहिने हाथ से ढककर नीचे लिखे मन्त्र से भस्म को अभिमन्त्रित करें—

ॐ अग्निरिति भस्म। ॐ वायुरिति भस्म। ॐ जलमिति भस्म। ॐ स्थलमिति भस्म। ॐ व्योमेति भस्म। ॐ सर्व (गूँ) ह वा इदं भस्म। ॐ मन एतानि चक्षूंषि भस्मानीति॥

भस्मधारण-मन्त्र

नीचे लिखे मंत्र से सूचित स्थानों में भस्म लगावें।

ॐ **त्र्यायुषं जमदग्नेः**—ललाट में। ॐ **कश्यपस्य त्र्यायुषम्**—कण्ठ में। ॐ **यद्देवेषु त्र्यायुषम्**—भुजाओं में। ॐ **तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्**—हृदय में।

इसके पश्चात् सन्ध्या-वन्दन[1] करें, यदि सन्ध्या नहीं आती हो, तो गायत्री-मन्त्र द्वारा सूर्यनारायण को प्रातः सूर्योदय से पूर्व तीन, सूर्योदय के बाद चार, मध्याह्न में यथासमय एक, बाद में दो और सायं यथासमय तीन और बाद में चार अर्घ्य देकर जप करें।

जप-विधि

जप करते समय दाहिना हाथ गोमुखी में डालें या वस्त्र से ढक लें। सिर पर हाथ तथा वस्त्र नहीं रखें "वाचिक" जप धीरे-धीरे बोल कर, "उपांशु" दूसरे नहीं सुनें तथा "मानस" जिह्वा और होठ न हिलाकर करना, उत्तरोत्तर उत्तम है। जप करते समय हिलना, ऊँघना, बोलना

---

१. विस्तारभय से यहाँ सम्पूर्ण सन्ध्या प्रकाशित नहीं की जा रही है। सन्ध्या की विभिन्न पुस्तकें प्रकाशित हैं। उनमें से कोई प्राप्त कर लें और योग्य गुरु द्वारा विधि सीख लें। यही उत्तम है।—लेखक

और माला का गिरना निषिद्ध है। यदि बोल लें, तो भगवत् स्मरण कर फिर से जप प्रारम्भ करें। प्रातःकाल में हाथ को सीधा तथा अंगुलियों को ऊपर की ओर नाभि के समीप, मध्याह्न में हृदय के समीप और सायंकाल में दाहिना घुटना खड़ा कर नासिका के समीप उल्टा हाथ करके जप करें। जिस आसन पर बैठकर जप किया है उसके नीचे की मृत्तिका मस्तक में लगावें। ऐसा नहीं करने से जप के फल को इन्द्र ले लेता है।

माला-विधि

प्रत्येक मणि के बीच में ग्रन्थि दी हुई, सुमेरु को छोड़कर १०८ मणियों की माला सबसे उत्तम है। माला को अनामिका पर रख कर अंगूठे से स्पर्श करते हुए मध्यमा से फेरें। सुमेरु का उल्लंघन नहीं करें। दुबारा फेरते समय सुमेरु के पास से माला घुमाकर जप करें।

माला-प्रार्थना

माला का पूजन तथा प्रार्थना करके फेरने से विशेष फल होता है। अतः "ॐ ह्रीं सिद्धयै नमः" यह मन्त्र बोलकर माला की गन्धाक्षत से पूजा करें और बाद में नीचे लिखे पद्य बोलकर प्रार्थना करें—

ॐ महामाये! महाकालि! सर्वशक्तिस्वरूपिणि!।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव! ॥
अविघ्नं कुरु माले! त्वं, गृह्णामि दक्षिणे करे।
जपकाले च सिद्ध्यर्थं, प्रसीद मम सिद्धये॥

इसके पश्चात् गायत्री-जप-विधि में सूचित बातों को ध्यान में रख कर मन्त्रार्थ चिन्तनपूर्वक जप करें।

जप की समाप्ति के बाद नीचे लिखे पद्य से क्षमा प्रार्थना करें—

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देवि! त्वत्प्रसादात् सुरेश्वरि!॥

इस प्रकार प्रारम्भिक नित्यकर्म करने के पश्चात् तान्त्रिक साधना में प्रवृत्त होना चाहिए। तन्त्र-साधना में जहाँ-जहाँ मन्त्रजप और पुरश्चरण का संकेत किया है, वहाँ **'मन्त्र-शक्ति'** में दिखाए गए प्रयोग के आधार पर संकल्प, न्यास, ध्यान आदि करना आवश्यक है। जप की पूर्ति के बाद दशांश-हवन का भी विधान है। अतः हवन की संक्षिप्त-विधि भी हम यहाँ दे रहे हैं, जो इस प्रकार है—

संक्षिप्त-हवन-विधि

आचम्य प्राणानायम्य, शिखाबन्धनम्—संकल्प पवित्रीधारणं च कृत्वा अद्य पूर्वोच्चारितैवंगुणविशेषेण विशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ अमुकगोत्रोत्पन्नः (शर्मा गुप्तोऽहं) हवनकर्म करिष्ये।

अग्नि शुद्ध कंडे की हो अथवा कर्पूर एवं घृत बत्ती से भी तैयार कर ध्यान करें।

अग्ने वैश्वानर शाण्डिल्यगोत्र त्रिप्रवर मेषध्वज प्राङ्मुख! मम सम्मुखो भव। गन्धाक्षतपुष्पाणि समर्पयामि।

इस प्रकार प्रज्वलित अग्नि की पूजा करके घृताहुति देवें। तथा प्रणीता-प्रोक्षणी के रूप में रखे हुए पात्र में स्वाहा के बाद **'इदमग्नये'** इत्यादि अंश बोलकर आहुति वाले घृत का थोड़ा-सा घी छोड़ें।

(१) ॐ प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये न मम। (२) ॐ भूः स्वाहा इदमग्नये न मम। (३) ॐ भुवः स्वाहा इदं वायवे न मम। (४) ॐ स्वः स्वाहा इदं सूर्याय न मम। (५) ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा इदमग्नये न मम। (६) ॐ इन्द्राय स्वाहा इदमिन्द्राय न मम। (७) ॐ अग्नये स्वाहा इदमग्नये न मम। (८) ॐ सोमाय स्वाहा इदं सोमाय न मम। (९) ॐ गणपतये नमः स्वाहा। (१०) ॐ ब्रह्मणे नमः स्वाहा। (११) ॐ विष्णवे नमः स्वाहा। (१२) ॐ रुद्राय नमः स्वाहा। (१३) ॐ गायत्र्यै नमः

स्वाहा। (१४) ॐ सावित्र्यै नमः स्वाहा। (१५) ॐ सूर्याय नमः ॐ चन्द्रमसे नमः ॐ भौमाय नमः ॐ बुधाय नमः ॐ गुरवे नमः ॐ शुक्राय नमः ॐ शनये नमः ॐ राहवे नमः ॐ केतवे नमः।

तदनन्तर इष्टमन्त्र से दशांश आहुति देना आवश्यक है। इसके बाद—

ॐ इन्द्राय नमः ॐ अग्नये नमः ॐ धर्मराजाय नमः ॐ निर्ऋतये नमः ॐ वरुणाय नमः ॐ वायवे नमः ॐ कुबेराय नमः ॐ ईशानाय नमः ॐ ब्रह्मणे नमः ॐ अनन्ताय नमः।

इन आहुतियों के बाद प्रार्थनापूर्वक नमस्कार कर विसर्जन करें—

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या, तपोयज्ञक्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति, सद्यो वन्दे तमच्युतम्॥

पुनः "पुरश्चरणं सम्पूर्णमस्तु" कहकर यथेष्ट दक्षिणादि दें। बाद में ब्राह्मणों से यही बुलवाकर ईश्वरार्पण कर दें।

सर्वविध तन्त्र-प्रयोगों से पूर्व करणीय

साधना-विधि

जो व्यक्ति अपनी कार्यसिद्धि के लिए तन्त्र-साधना का निर्णय कर चुका हो उसे सर्वप्रथम साधक की पात्रता प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित दो कार्य सावधानी से कर लेने चाहिए—

(१) दत्तात्रेय-मन्त्र जप-पूर्वक पुरश्चरण

मन्त्र—ॐ परब्रह्म-परमात्मने नमः उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय-कराय ब्रह्महरिहराय त्रिगुणात्मने सर्वकौतुकानि दर्शय-दर्शय दत्तात्रेय नमः। तन्त्राणां सिद्धिं कुरु-कुरु स्वाहा।'

इस मन्त्र की दीपावली अथवा ग्रहण के समय १० माला अर्थात् १००८ संख्या में जप कर पुरश्चरण-पद्धति[1] से सिद्ध कर लें और फिर

---

१. पुरश्चरण के सम्बन्ध में विशेष जानकारी 'मन्त्र-शक्ति' से प्राप्त करें।

जब-जब प्रयोग करें तब पहले इस मन्त्र का २१ बार जप करके मूल मन्त्र का जप करें।

(२) **नवार्ण-यन्त्र** (धारण करने के लिए)

इसी प्रकार तन्त्र की सिद्धि के लिए नीचे लिखा हुआ यन्त्र शुभ मुहूर्त में भोजपत्र पर लाल चन्दन से लिखकर धूप देवें तथा '**ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे**' इस मन्त्र का १०८ बार जप करके तावीज में अथवा लाल वस्त्र में बाँधकर गले में अथवा भुजा पर धारण करें। यन्त्र[1] इस प्रकार है—

ऐं	ह्रीं	क्लीं
चा	मु	ण्डा
यै	वि	च्चे

ऐसा करने से कार्यसिद्धि में आनेवाले 'विघ्नों का नाश' तथा 'आत्मरक्षा' होती है। फिर अपने इष्टदेव का स्मरण करके प्रयोग करें और आत्मबल बनाए रखें।

—: ० :—

१. यह यन्त्र देवी का है। इसी प्रकार तान्त्रिक-कर्म को ध्यान में रखकर भैरव, हनुमान आदि देवताओं के मूल मन्त्राक्षरों को भी यन्त्र के रूप में लिखकर ताबीज बनाकर धारण किया जा सकता है।

२ | शास्त्रीय तथा लौकिक तन्त्र

पहले कहा जा चुका है कि तन्त्रों का बहुत विस्तार है और यही कारण है कि इसमें अनेक प्रकार के शास्त्रीय और लौकिक प्रयोग प्राप्त होते हैं। शास्त्रीय-तन्त्रों से हमारा तात्पर्य है प्रसिद्ध देवी-देवताओं के दीक्षापूर्वक प्रातःकाल से शयन पर्यन्त न्यास ध्यान, आवरण-पूजा, हवन, जप आदि का विधान। ऐसे तन्त्रों के लिए पृथक्-पृथक् ग्रन्थों में विस्तार पूर्वक वर्णन प्राप्त होता है। ऐसी उपासना करने वाले साधक के लिए अन्यान्य तान्त्रिक प्रयोग की अपेक्षा नहीं है। अपने दीक्षा मन्त्र से ही सभी प्रकार के प्रयोग केवल प्रकार-विशेष से किए जा सकते हैं। उदाहरणार्थ यदि कोई बगुलामुखी का उपासक है, उसको आकर्षण प्रयोग करना हो, तो उसी मन्त्र और यन्त्र के आकर्षण के लिए '**अमुकं आकर्षय आकर्षय**' जोड़कर पुष्प-पूजा करे, मन्त्र जप करे, धूप दे, तो कार्य सिद्ध हो जाता है। स्तम्भन के लिए मन्त्र-यन्त्र लिखकर '**अमुकं स्तम्भय स्तम्भय**' जोड़कर साधना करे। साथ ही दो शिला-खण्डों के बीच में मन्त्र-यन्त्र लिखकर दबा दे और ऊपर धूप-दीप द्वारा पूजन करता रहे। इसी प्रकार अन्य कर्म भी समझें।

महाविद्याओं के दीक्षितों के लिए वाञ्छाचिन्तामणि, वाञ्छाकल्पलता रश्मिमाला आदि में अनेकविधि-मन्त्रों का समावेश है उनके आधार पर ही सभी कार्य सिद्ध होंगे।

(१) सर्वसिद्धिप्रद गणपति-तर्पण-प्रयोग

भगवान् गणपति को प्रसन्न करके सर्वविधि-समृद्धि प्राप्त करने के लिए एक शास्त्रीय तन्त्र प्रयोग इस प्रकार है—

विधि—एक थाली में गणपति की मूर्ति को **गणपतियन्त्र**[1] पर स्थापित करके पहले पञ्चोपचार पूजा करे। बाद में एक बड़े पात्र में शुद्ध जल लेकर अर्घपात्र से गणपति के चरणों में निम्नलिखित मन्त्रों से अर्घ्य चढ़ाए।

संकल्प—

अस्य श्रीमहागणपतिमन्त्रस्य गणक ऋषिः निचृद् गायत्री छन्दः महागणपतिर्देवता, मम सकलकामनासिद्धये महागणपतितर्पणे विनियोगः।

न्यासाः

श्रीँ ह्रीँ क्लीँ ॐ	गाँ	अंगुष्ठाभ्यां नमः।	हृदयाय नमः।
,,	गीँ	तर्जनीभ्यां नमः।	शिरसे स्वाहा।
,,	गूँ	मध्यमाभ्यां नमः।	शिखायै वषट्।
,,	गैँ	अनामिकाभ्यां नमः।	कवचाय हुम्।
,,	गौँ	कनिष्ठिकाभ्यां नमः।	नेत्रत्रयाय वौषट्।
,,	गः	करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।	अस्त्राय फट्।

ध्यानम्—

ध्याये हृदब्जे शोणांगं, वामोत्संग-विभूषया।
सिद्धलक्ष्म्या समाश्लिष्टं, पार्श्वमर्धेन्दुशेखरम्॥
वामाधः करतो दक्षाधः करान्तेषु पुष्करे।
परिष्कृतं मातुलुंगं, गदा—पुण्ड्रेक्षु-कार्मुकैः॥

---

१. चतुरस्र, अष्टदल, षट्कोण और त्रिकोण से गणपति-यन्त्र बनता है। इसे गन्ध अथवा कुंकुम से थाली में बना लें अथवा खुदवा लें, अन्य काम्य प्रयोगों के लिए गणपति की मूर्ति पर विविध अंगों में भी तर्पण का विधान है।

शूलेन शङ्खचक्राभ्यां, पाशोत्पल-युगेन च।
शालिमञ्जरिका स्वीयदन्ताञ्जलिमणीघटैः॥
स्रवन्मदञ्च सानन्दं, श्रीश्रीपत्यादि-संवृतम्।
अशेषविघ्नविध्वंसनिघ्नं, विघ्नेश्वरं भजे॥

इस प्रकार ध्यान करके यन्त्र और मूर्ति की गन्ध, पुष्प और दूर्वाङ्कुर से पूजा करे तथा मानस पूजा भी करे। तदनन्तर आचमनी, अर्घपात्र अथवा अञ्जलि से नीचे लिखे मन्त्र बोलते हुए तर्पण करे—

'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा' महागणपतिं तर्पयामि (१२ बार)

ॐ स्वाहा	महागणपतिं	तर्पयामि	(४ बार)
ॐ (मूल मन्त्र द्वारा)	"	"	"
ऐं ह्रीं श्रीं श्रीं स्वाहा	"	"	"
मूलमन्त्र द्वारा	"	"	"
३ ह्रीं स्वाहा	"	"	"
मूलमन्त्र द्वारा	"	"	"
३ क्लीं स्वाहा	"	"	"
मूलमन्त्र द्वारा	"	"	"
३ ग्लौं स्वाहा	"	"	"
मूलमन्त्र द्वारा	"	"	"
३ गं स्वाहा	"	"	"
मूलमन्त्र द्वारा	"	"	"

१. यह मूल मन्त्र है। इसे कण्ठस्थ कर लें। इसका अनेक बार स्मरण होता है, जहाँ ३ का अंक दिया है वहाँ 'ऐं ह्रीं श्रीं' बोलें। 'तपर्यामि' के बाद जितने अंक लिखे हैं उतनी बार तर्पण का जल छोड़ें।

३	णं स्वाहा	महागणपतिं	तर्पयामि	(४ बार)
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	पं स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	तं स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	यँ स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	वं स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	रं स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	वं स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	रं स्वाहा	,,	,,	i,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	दं स्वाहा	,,	,,	,,
	मलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	सं स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	वं स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	जं स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	नं स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	मे स्वाहा	,,	,,	,,

	मूलमन्त्र द्वारा	महागणपतिं	तर्पयामि	(४ बार)
३	वं स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	शं स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	मां स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	नं स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	यं स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	स्वां स्वाहा	,,	,,	,,
	महामन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	हां स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	श्रीपतिं स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	गिरिजां स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	गिरिजापतिं स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	रतिं स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	रतिपतिं स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	महीं स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,

३	महीपतिं स्वाहा	महागणपतिं	तर्पयामि	४ बार
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	महालक्ष्मीं स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	महागणपतिं स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	ऋद्धिं स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	आमोदं स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	समृद्धिं स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	प्रमोदं स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	कान्तिं स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	सुमुखं स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	मदनावतीं स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	दुर्मुखं स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	मदेद्रवां स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	अविघ्नं स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	द्राविणीं स्वाहा	,,	,,	,,

	मूलमन्त्र द्वारा	महागणपतिं	तर्पयामि	४ बार
३	विघ्नकर्तारं	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	वसुधरां स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	शङ्खनिधि स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	वसुमतीं स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	,,
३	पद्मनिधि स्वाहा	,,	,,	,,
	मूलमन्त्र द्वारा	,,	,,	(१२ बार)

इस प्रकार कुल ४४४ बार तर्पण करके उत्तरन्यास[1] करें और पुनः मूलमन्त्र द्वारा गणपति की पूजा करें।

गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाण कृततर्पणम्।
सिद्धिर्भवतु मे देव ! त्वत्प्रसादान्मयि स्थिरा ।।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं बलं पुष्टिर्महद्यशः।
कवित्वं भुक्ति-मुक्ती च चतुरावृत्तितर्पणात् ।।

अनेन कृतेन तर्पणेन भगवान् श्रीसिद्धिलक्ष्मीसहितः श्रीमहागणपतिः प्रीयताम् ।।

इतना कहकर जल छोड़ें।

यदक्षरपदं भ्रष्टं मात्राहीनं च यद् भवेत् ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर ।।

इसी प्रकार अन्य देवताओं के भी अनेक शास्त्रीय प्रयोग हैं जिसका विस्तार अधिक होने से यहाँ नहीं दे रहे हैं। विशेष जानने के इच्छुक सज्जन मन्त्रमहोदधि, मन्त्रमहार्णव, अनुष्ठान-प्रकाश, (लेखक) प्रपञ्चसारतन्त्र आदि ग्रन्थ देखें तथा गुरुचरणों की कृपा से प्राप्त करें। (लेखक)

१. पहले बतलाये हुए न्यास करें।

(२) गायत्री मन्त्र के तान्त्रिक प्रयोग तथा हवन

गायत्री-मन्त्र के सम्बन्ध में विश्वामित्रकृत 'गायत्री-स्तवराज' और अन्य ग्रन्थों में तथा अनेक सिद्ध महात्माओं ने कुछ प्रयोग साधकों के हितार्थ बतलाए हैं। अपनी विशिष्ट समस्याओं के निराकरण व सिद्धि के लिए इनका अनुभव किया जाना सर्वथा उपयुक्त होगा। ॐ भूर्भुवः स्वः इन व्याहृतियों के बाद गायत्री के आदि-अन्त में बीज मन्त्रों का उच्चारण सम्पुट कहलाता है। निम्न सम्पुट मन्त्रां का प्रयोग सम्मुख दिखाई गई फल प्राप्ति में सहायक होता है—

१. **ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं**—इस सम्पुट को लगाने से लक्ष्मी और सौख्य की प्राप्ति होती है।

२. **ॐ ऐं क्लीं सौः**—इस सम्पुट के प्रयोग से वाक्सिद्धि होती है।

३. **ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं**—इस सम्पुट के प्रयोग से सन्तान प्राप्ति, वशीकरण और मोहन होता है।

४. **ॐ ऐं ह्रीं क्लीं**—इस सम्पुट के प्रयोग से शत्रु उपद्रव, समस्त विघ्न-बाधाएँ एवं संकट दूर होकर भाग्योदय होता है।

५. **ॐ ह्रीं**—इस सम्पुट के प्रयोग से रोग नाश होकर सब प्रकार के ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

६. **ॐ आँ ह्रीं क्लीं**—इस सम्पुट के प्रयोग से पास के द्रव्य का रक्षण होकर उसकी वृद्धि होती है एवं इच्छित वस्तु की प्राप्ति होती है।

हवन प्रयोग—गायत्री-मन्त्र का सम्पुट से जप करने के अतिरिक्त विशेष फल की प्राप्ति हेतु हवन का प्रयोग भी विभिन्न फलों को प्रदान करता है। जो मनुष्य किसी विशेष फल की प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील होते हैं उन्हें गायत्री-मन्त्र का उच्चारण करते हुए निम्न वस्तुओं द्वारा हवन करने से यथोक्त फल की प्राप्ति होती है—

(१) लाल कमल या जूही के ताजे फूलों द्वारा हवन करने से सुवर्ण और लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ।

(२) बिल्व वृक्ष की समिधा, पत्र, फूल, फल या जड़ इनमें से किसी का खीर और घृत के साथ हवन करने से पर्याप्त लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ।

(३) दूध, दही और घृत में भिगोई हुई अग्रभाग (नोक) सहित पलाश (खाकरा) की समिधा और चावलों का हवन करने से सुवर्ण की प्राप्ति और आयुष्य की वृद्धि होती है ।

(४) शमी, बिल्व और विशेषकर आक की समिधा तथा फूलों का घृत सहित हवन करने से सुवर्ण की प्राप्ति होती है ।

(५) बेल के पत्तों को घी में भिगोकर हवन करने से महान् धनवान् होता है ।

(६) शुद्ध गूगल की गोलियाँ बनाकर घी सहित हवन करने से भाग्य की वृद्धि होती है, इसमें कुछ भी संशय नहीं ।

(७) पलाश (खांखरा) के फूलों का घृत सहित हवन करने से समस्त इष्ट वस्तुएँ प्राप्त होती हैं ।

(८) चन्द्र ग्रहण में खेर और चन्दन की समिधा का घृत सहित हवन करने से सुवर्ण की प्राप्ति होती है ।

(९) तिल एवं जौ का घृत सहित लक्ष होम करने से सुवर्ण की प्राप्ति होती है ।

(१०) गिलोय के टुकड़ों को दूध में भिगोकर हवन करने से ज्वर का नाश होकर मृत्युयोग टल जाता है । मृत्युञ्जय मन्त्र के होम में भी यह प्रयुक्त होती है ।

(११) आम के पत्तों को दूध में भिगोकर हवन करने से ज्वर का नाश होता है ।

(१२) बच को दूध में भिगोकर या उसको दूध, घृत, दही, शहद के

साथ मिलाकर हवन करने से क्षय रोग नष्ट होता है।

(१३) खीर का हवन और खीर का सूर्य को नैवेद्य लगाकर रोगी को नहलाने से क्षय रोग की शान्ति होती है।

(१४) शंखाहुली के फूलों का हवन करने से कुष्ठ रोग नष्ट होता है।

(१५) चिरचिरे के छिलके से निकाले हुए चावलों का हवन करने से अपस्मार (मृगी) रोग का नाश होता है।

(१६) क्षीर वृक्ष अर्थात् जिससे दूध निकलता हो, ऐसे वृक्ष—पीपल, बरगद, गूलर, आक आदि की समिधाओं का हवन करने से उन्माद (पागलपन) दूर होता है।

(१७) गूलर की समिधाओं का शहद के साथ और ईख के रस का हवन करने से सब प्रकार का प्रमेह रोग नष्ट होता है।

(१८) घृत, दही और शहद या केवल कपिला गौ के घृत का हवन कर हवन की भस्म लगाने से छाजन दूर होती है।

(१९) दूब (दूर्वा) को घृत, शहद या दूध में भिगोकर हवन करने अथवा शमी या बरगद की समिधाओं का खीर और घृत के साथ सात दिन तक सौ-सौ आहुति देकर हवन करने से अपमृत्यु अर्थात् अपघात आदि से अकाल में होने वाली मृत्यु टलती है।

(२०) यदि ग्रहपीड़ा से मुक्ति की इच्छा हो, तो अनिष्ट ग्रह की समिधा का हवन करना चाहिये तथा उस ग्रह के मन्त्र को गायत्री-मन्त्र सम्पुटित करके उससे जप और हवन करना उत्तम माना गया है।

३ | विविध वनस्पति तन्त्र

आधुनिक विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि—"वृक्ष प्राणियों के समान ही चेतना सम्पन्न हैं और इनमें भी चेतन प्राणी के समान सुख-दुःख का अनुभव होता है।" और इससे भी अधिक दैवी-शक्ति का निवास हमारे प्राचीन आचार्यों ने वृक्षों में माना था और यही कारण था कि वृक्षों के पाँचों अंग—१-मूल, २-शाखा, ३-पत्र, ४-पुष्प और ५-फल को विभिन्न रूप से उपयोगी घोषित कर उनको भी उपासना में आदरणीय स्थान दिया। तन्त्र में भी वनस्पति के पाँचों अंग महत्त्व-पूर्ण माने गए हैं। ऐसे तन्त्र-प्रयोगों का संग्रह हम वनस्पति-तन्त्र में दे रहे हैं।

'नरपतिजयचर्या' नामक ग्रन्थ में 'ब्रह्मयामल' ग्रन्थ के आधार पर निम्नलिखित औषधियों को दिव्य बताकर जयप्राप्ति के लिए संग्रह करने का सूचन किया है—

ईश्वरी ब्रह्मदण्डी च कुमारी वैष्णवी तथा।
वाराही वज्रिणी चण्डी तथा रुद्रजटाभिधा॥ ११॥

लाङ्गली सहदेवी च पाठा राजी पुनर्नवा।
मुद्गरी भूतकेशी च सोमराजी हनूजटा॥
श्वेताऽपराजिता गुञ्जा श्वेता च गिरिकर्णिका।
क्षुद्रिका शङ्खिनी चैव विडङ्गी शरपुंखिका॥
खर्जूरी केतकी ताडी पूगी स्यान्नारिकेलिका।
अञ्जनः काञ्चनश्च चम्पकोऽश्मन्तकः कुहूः॥

अपामार्गोऽर्कभृङ्गौ च ब्रह्मवृक्षो वटस्तथा।
क्षतमूली बलायुग्मं गोजिह्वोपलसारिका ।।
अष्टलोहरसा वज्रा हरिद्रा तालकं शिला।
एताश्चौषधयो दिव्या जयार्थं सङ्ग्रहेद् बुधः ।।

इनमें कई औषधियाँ हमारी परिचित और अनुभूत हैं। ईश्वरी-ककड़ी, कुमारी-वड़ी इलायची, वैष्णवी-तुलसी, वाराही-जल-बेंत, वज्रिणी-थूहर, चण्डी-सोंफ, सोवा सफेद दूब, लांगली-मजीठ, नारियल, केवाँच; राजी-राई, मुद्गरी-मोगरा, भूतकेशी-श्वेततुलसी, सोमराजी-बाकुची इत्यादि के अभिमन्त्रक, तान्त्रिक प्रयोगों का विधान आदि का उल्लेख भी तन्त्रग्रन्थों में यत्र-तत्र प्राप्त होता है। हम इनमें से कुछ वनस्पतियों का विधिपूर्वक प्रयोग आगे प्रस्तुत करेंगे।

वैसे इन्हीं वनस्पतियों के सूखे हुए अंशों से धूप बनाकर भी साधना की जाती है। षडंग धूप, अष्टांग या दशांग धूप के विधान भी हम आगे प्रस्तुत करेंगे।

वनस्पति हमारे जीवन के लिये कितनी उपयोगी है, यह किसी से छिपा नहीं है। दैवी-शक्ति से सम्पन्न कुछ वृक्षों की नित्य पूजा का विधान भी शास्त्रों में प्राप्त होता है। यही कारण है कि भारतीय आस्तिक समाज ऐसे वृक्षों की नित्य पूजा करता है। वट, पीपल, तुलसी, आँवला और केले के वृक्षों की जल सींचकर गन्धाक्षत से पूजा की जाती है। यदा कदा दूध भी चढ़ाते हैं। कच्चा सूत अथवा मौली चढ़ाई जाती है। तुलसी का विवाह भी इसी आचार में आता है।

वनस्पति का प्रयोग तिलक के लिए भी होता है। चन्दन, हल्दी या अन्य वनौषधियों को घिसकर ललाट पर लगाने में भी तान्त्रिक रहस्य छिपा हुआ है। कहीं-कहीं इन्हें अभिमन्त्रित करके कटि, भुजा, कण्ठ और शिखा-स्थान पर काले, लाल या अन्य रंग के ऊनी डोरे या वस्त्र

में बाँधकर धारण करने का विधान आता है, तो कहीं इन्हें जल में मिलाकर स्नान करने की विधि है और कुछ के तैल का प्रयोग भी मिलता है । इनमें कुछ प्रयोग यहाँ विधि सहित दिए जा रहे हैं।

सब प्रकार की मूलिका-ग्रहण विधि

सर्वविध औषधियों की मूलिका—जड़ों का ग्रहण करने के लिए शास्त्रों में निम्नलिखित विधि बताई गई है ।

शनिवार अथवा किसी पर्व दिन के पहले जिस वृक्ष की जड़ लानी हो, उसके वहाँ पवित्रतापूर्वक सायंकाल को जाए तथा **'मम कार्यसिद्धि कुरु-कुरु स्वाहा'** इस मन्त्र का २१ बार जप करके अक्षत (चावल) चढ़ाए तथा **'मैं कल प्रातः आपको लेने आऊँगा, आप अपनी शक्ति सहित तैयार रहें'** यह कहते हुए प्रणाम करे और आमन्त्रण देकर चला आए।

दूसरे दिन प्रातः काल सूर्योदय से पूर्व उठकर स्नानादि से निवृत्त हो भगवान् शिव की पूजा करे। फिर उस आमन्त्रित वृक्ष के पास जाए और वहाँ नीचे लिखे मन्त्र बोलकर उसका अभिमन्त्रण करे—

ॐवेतालाश्च पिशाचाश्च राक्षसाश्च सरीसृपाः ।
अपसर्पन्तु ते सर्वे वृक्षादस्माच्छिवाज्ञया ।। १ ।।
ॐनमस्तेऽमृतसम्भूते बलवीर्य-विवर्धिनि ! ।
बलमायुश्च मे देहि पापान् मां त्राहि दूरतः ।। २ ।।
ॐयेन त्वां खनते ब्रह्मा, येन त्वां खनते भृगुः ।
येन ह्यन्द्रोऽथ वरुणो, येन त्वामपचक्रमे ।। ३ ।।
तेनाहं खनयिष्यामि, मन्त्रपूतेन पाणिना ।
मा पातेमानि पतिते, मा ते तेजोऽन्यथा भवेत् ।। ४ ।।
अत्रैव तिष्ठ कल्याणि ! मम कार्यकरी भव ।
मम कार्ये कृते सिद्धे ! ततः स्वर्गं गमिष्यसि ।। ५ ।।

अर्थात्—जो वेताल, पिशाच, राक्षस, सर्प आदि इस वृक्ष से सम्बद्ध हों वे भगवान् शिव की आज्ञा से दूर चले जाएँ ।। १ ।। हे अमृत से उत्पन्न, बल और वीर्य को बढ़ाने वाली औषधि ! मुझे बल और आयुष्य प्रदान करो तथा दूर से ही मुझे पापों से बचाओ ।। २ ।। जिस मन्त्र द्वारा पवित्र हाथ से तुझे ब्रह्माजी खोदते हैं, जिससे भृगु ऋषि खोदते हैं, जिस विधि से इन्द्र और वरुण तुझे मूल से अलग करते हैं उसी विधि से मैं भी तुझे खोदूँगा—निकालूँगा । अतः तुम स्वयं गिरो नहीं और तुम्हारा तेज तुमसे पृथक् न हो ।। ३-४ ।। हे कल्याणी, तुम यहीं और निवास करो । मेरे कार्य की सिद्धि हो जाने पर स्वर्ग में जाना । (इससे यह स्पष्ट है कि वृक्ष को उखाड़ने पर उसका सिद्धितत्त्व उसके अभिमन्त्रण के बिना उसमें से निकल जाता है ।) ।। ५ ।।[1]

फिर 'ॐ ह्रीं चण्डे हुँ फट् स्वाहा' यह मन्त्र बोलते हुए पौधे को उखाड़े । 'ॐ ह्रीं क्षौं फट् स्वाहा' इस मन्त्र से उसके ऊपर का

१-'ब्रह्मयामल' में कहा गया है कि—

सूर्येन्दुग्रहणे प्राप्ते दीपोत्सव-दिनत्रये ।
पुष्यमूलार्कयोगे च महानवमिवासरे ।।
खदिरेण च कीलेन प्रोद्धरेत्ता महौषधीः ।
बलिपूजाविधानेन सर्वकर्मसु सिद्धिदा ।।

अर्थात् —सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण, दीपोत्सव के तीन दिन (धन तेरस, नरक चौदस और अमावस्या), रविपुष्य योग, रविमूल योग और महानवमी के दिन खदिर-पलाश के कीले से महान् औषधियों का खनन करे और बलि-पूजा आदि का विधान करे जिससे वे सब प्रकार की सिद्धियाँ प्रदान करती हैं ।

ग्रहणकाल की यह विशेषता है कि इस समय में जप करने से पुरश्चरण स्वयं ही हो जाता है और उसके लिए अलग दशांश हवन आदि की अपेक्षा भी नहीं रहती है ।

अनुपयोगी भाग काटे और '**ॐवनदण्डे महादण्डाय स्वाहा**' इसका सात बार जप करके उसे घर ले आए। घर आकर उसे किसी ऊँचे स्थान पर रखे, जमीन पर न रखे। फिर पंचगव्य (गोबर, गोमूत्र, गोदुग्ध, गोदधि तथा गोघृत) से स्नान कराए अथवा पंचामृत (दूध, दही, घृत, शहद और शर्करा) से स्नान कराए और गौ के घृत से धूप देकर रेशमी वस्त्र अथवा काले या लाल डोरे में लपेटकर धारण करे।

इस प्रकार धारण करने से इच्छित कार्य की सिद्धि होती है।

(१) सहदेवी कल्प

सहदेवी का एक छोटा-सा पौधा होता है, जिसे जड़ी-बूटी के रूप में मानते हैं। जहाँ सहदेवी का पौधा हो वहाँ शनिवार की रात्रि में अथवा सन्ध्या के समय जाकर धूप लगाए तथा एक सुपारी रखकर दोनों हाथ जोड़ते हुए प्रार्थना करे कि—"हे सहदेवी, कल प्रातः काल मेरे अभीष्ट की सिद्धि हेतु आपको पधारने के लिये मैं आमन्त्रित करता हूँ। आप पधारने की कृपा करें।" इतना कहकर अपने घर चला आए। दूसरे दिन रविवार को प्रातः काल होने से पूर्व वहाँ जाकर उस आमन्त्रित पौधे के सामने १ फल अर्पित करे तथा निम्नलिखित मन्त्र का २१ बार जप करे।

"**ॐ नमो भगवती सहदेवी सद्बलदायिनी सद्देववत् कुरु-कुरु स्वाहा॥**"

इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करके जड़ सहित पौधे को बाहर निकाले और मौन रहकर अपने घर लाकर एक पटिये पर स्थापित करे। फिर उसकी षोडशोपचार पूजा करे जिसमें धूप-दीप, नैवेद्य तथा फल अवश्य समर्पित हों।

बाद में—प्रार्थना करे कि "**हे देवी! मेरी अभीष्ट-सिद्धि के लिये आप प्रसन्न हों तथा मुझे इच्छित प्रयोग करने की आज्ञा प्रदान करें।**"

ऐसी प्रार्थना करके प्रणाम करे तथा यह भावना करे कि 'आज्ञा प्राप्त हो गई है' तदनन्तर उसका रस निकाले। इस रस में गोरोचन और केसर डालकर गोली बना ले। फिर जब कभी काम पड़े तब गोली को घिसकर तिलक लगाये। ऐसा करने से जिसके साथ वार्तालाप होगा, वह आकर्षित होगा तथा कार्यसिद्धि होगी।

सहदेवी के अन्य प्रयोग

(१) ऊपर बताई गई विधि के अनुसार ही लाई हुई सहदेवी की जड़ को हाथ पर धूप देकर बांधने से विविध रोग नष्ट होते हैं।

(२) इसके चूर्ण को गाय के घी में मिलाकर खाने से वन्ध्या स्त्री को पुत्र की प्राप्ति होती है।

(३) प्रसव के समय कष्ट हो रहा हो, तो इसकी जड़ को कमर में बाँधने से सुखपूर्वक प्रसव होता है।

(४) कण्ठमाल रोग से पीड़ित रोगी के गले में बाँधने से उक्त रोग चला जाएगा।

(५) हाथ के किसी भाग में बाँधकर वाद-विवाद में जाने से विजय प्राप्त होती है।

विशेष—जड़ को किसी लाल वस्त्र में लपेटकर पुरुष दाहिने हाथ के मणिबन्ध अथवा भुजा पर बाँधे तथा स्त्री बाँए हाथ में बाँधे।

—इति सहदेवी कल्प—

(२) श्वेतार्ककल्प

आक के वृक्ष की दो जातियाँ है। एक लाल तथा अन्य सफेद। इनमें सफेद जाति के आक को संस्कृत में **'मन्दार'** कहा जाता है। इसमें विलक्षणता होने से इसके सम्बन्ध में कई **'कल्पों'** का निर्माण हुआ है।

प्राचीन मान्यता है कि जहाँ श्वेत आक का पेड़ होता है, उसके

आस-पास जमीन में गड़ा हुआ धन रहता है और जिस दिशा की ओर वह धन रहता है, उस ओर जड़ें अधिक फैलती हैं।

प्राचीन काल में धन-सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए उसे भिन्न-भिन्न स्थानों पर जमीन के अन्दर गाड़ देते थे। और उसकी जानकारी के लिए कुछ निशानियाँ रख लेते थे। कालान्तर में ऐसे स्थानों पर आस-पास में श्वेत अर्क के पौधे निकल आते और उनकी जड़ें उसी दिशा की ओर अधिक बढ़ती रहतीं कि जिस ओर धन गड़ा हुआ होता है।

ऐसे जमीन में गाड़े गये धन को निकालना सरल कार्य नहीं होता। अतः आचार्यों ने विभिन्न प्रयोग दिखाये हैं। श्वेतार्क की जड़ के चार प्रयोग यहाँ दिये जा रहे हैं—

(१ **श्वेतार्कमूल**—रविवार तथा पुष्य नक्षत्र को जब यह अर्क लाना हो, तो उसके एक दिन पूर्व पूर्वलिखित विधि के अनुसार ले आने का आमन्त्रण दे आये तथा दूसरे दिन सूचित विधि के अनुसार प्रार्थना करके सफेद आक की जड़ निकालकर घर लाये और फिर विधि के अनुसार पूजन करे।

यह जड़ जिस पुरुष के दाहिने हाथ में अथवा जिस स्त्री के बाँयें हाथ में बाँधी जाती है उसे सभी कार्यों में यश और विजय प्राप्त होती है। महिलाओं के सौभाग्य की अभिवृद्धि होती है। सन्तान की इच्छा रखनेवाली स्त्री की कटि में बाँधने से पुत्र की प्राप्ति होती है।

(२) उपर्युक्त विधि से लाए गए आक के मूल को छाया में सुखा कर उसका चूर्ण बनाए तथा उस चूर्ण को प्रतिदिन गाय के दूध के साथ सेवन करे, तो बुढ़ापे से उत्पन्न शिथिलता दूर होती है; स्मरण शक्ति बढ़ती है और शरीर कान्तिमान् बनता है।

कुल ४० दिन तक इस चूर्ण का सेवन करने से सभी प्रकार के रोग नष्ट होते हैं तथा आयु एवं बल की वृद्धि होती है। यह चूर्ण थोड़ी मात्र में ही सेवन करना चाहिए जिससे यदि कोई विकार उत्पन्न होता

दिखाई दे, तो इसका सेवन बन्द कर दे।

(३) इस मूल को घिसकर ठण्डे पानी के साथ पिलाने से अनेक प्रकार के विष का शमन होता है और लेप करने से बिच्छू आदि का जहर उतर जाता है।

श्वेतार्कगणपति—सफेद आक की जड़ों में कहीं-कहीं ऐसी गाँठें होती हैं कि जिनका आकार गणपति और उनकी सूँड के समान बन जाता है। जहाँ ऐसी सम्भावना हो अथवा पर्याप्त पुराना हुआ पेड़ हो वहाँ पूर्वोक्त विधि से आमन्त्रित करके रविपुष्य, गुरुपुष्य अथवा गणेश चतुर्थी को बैठकर चाँदी के कुदाल से जमीन खोदकर चाँदी के ही चाकू से मूल भाग निकाले और फिर उसको गणपति के आकार में छीलकर मूर्ति बना लें फिर घर लाकर विधिवत् प्राण-प्रतिष्ठा और पूजन करें। ऐसी श्वेतार्कमूल से बनाई गई मूर्ति की नित्य पूजा करने से लक्ष्मी, सुख-सौभाग्यादि प्राप्त होते हैं।[1] '**दत्तात्रेयतन्त्र**' में यही प्रयोग इस प्रकार बतलाया है—

पुष्यार्के तु समानीय मूलं श्वेतार्कसम्भवम्।
अंगुष्ठ-प्रतिमां कृत्वा प्रतिमां तु प्रपूजयेत्॥

रविपुष्य के दिन सफेद आक की जड़ लाकर एक अंगूठे के बराबर गणपति की मूर्ति बनाये तथा उसकी (प्राण-प्रतिष्ठा करके) पूजा करे—

गणनाथस्वरूपं तु भक्त्या रक्ताश्वमारजैः।
कुसुमैश्चापि गन्धाद्यर्हविष्याशी जितेन्द्रियः॥
पूजयेन्नाममन्त्रैश्च तद्बीजानि नमोऽन्तकैः॥
यान्-यान् प्रार्थयते कामानेकमासेन ताँल्लभेत्॥
प्रत्येक-काम्यसिद्ध्यर्थं मासमेकं प्रपूजयेत्।

गणपति के स्वरूप का भक्तिपूर्वक ध्यान करते हुए लाल कनेर के

---

१. अनुभवी लोगों का कहना है कि श्वेतार्क के मूल में ३-५-७-९ जैसे विषम वर्णों में स्वयं गणपति बन जाते हैं।

पुष्प, गन्ध आदि से 'ॐ गं नमः', 'ॐ, अन्तरिक्षाय स्वाहा' अथवा 'ॐ गं गणपतये नमः' यह मन्त्र बोलते हुए पूजा करे। बाद में 'ॐ ह्रीं पूर्वदयां ॐ ह्रीं फट् स्वाहा' इस मन्त्र से लाल कनेर के पुष्पों का हवन करे। यह अनुष्ठान एक मास तक हविष्य अन्न खाते हुए ब्रह्मचर्यपूर्वक करने से सभी इच्छित फलों को प्रदान करता है।

(३) निर्गुण्डी कल्प

निर्गुण्डी का दूसरा नाम सिन्दुवार है, भाषा में इसे नगोड़ भी कहते हैं। मराठी में निर्गुणी और बंगाली में निशिंदा कहते हैं।

निर्गुण्डी का वृक्ष पर्याप्त ऊंचा बढ़ता है। इसकी प्रत्येक शाखा में लम्बे और पतले तीन-तीन अथवा पाँच-पाँच पत्ते होते हैं। इसके फल आम की मञ्जरी के समान गुच्छेदार और जामुनिया रंग के होते हैं। इसके बीजों को रेणुक बीज कहते हैं।

(१) **प्रयोग**—रात्रि के समय अकेले वृक्ष के पास जाए और '**ॐ नमो गणपतये कुबेरायैकदन्ताय फट स्वाहा**' इस मन्त्र का उच्चारण प्रदक्षिणा करते हुए उसकी २१ बार प्रदक्षिणा करे। इस प्रकार सात रात्रि तक देने से वृक्ष सिद्ध होकर अत्यन्त गुणकारी बन जाता है। बाद में इस वृक्ष की छाल का चूर्ण और जीरे का चूर्ण समभाग में एकत्र करके आठ दिन तक सेवन करे। इसके सेवन से ज्वरादि दूर होते हैं, भूमिगत द्रव्य जानने की क्षमता प्राप्त होती है तथा अधिक दिन तक सेवन करने से शारीरिक बल बढ़ता है।

(२) निर्गुण्डी के पत्तों का रस निकालकर २१ दिन तक प्रातःकाल में वैद्य की सलाह से सेवन करे तथा इन दिनों में भोजन बहुत हल्का, खिचड़ी आदि का सेवन करने से योगसाधना अथवा अन्य मन्त्रसाधना में मानसिक शान्ति, आत्मबल तथा शारीरिक स्वस्थता प्राप्त होती है।

(४) रक्तगुंजा-कल्प[1]

रक्तगुंजा अथवा लाल घूघची (चिरमीटी) की उत्पत्ति लता पर होती है तथा इसके पतले और लम्बे पत्ते होते हैं। इस पर लगनेवाली घूघची के तीन प्रकार होते हैं—श्वेत, लाल और काली। यह एक विष है, अतः इसका शोधन किये विना खाने में उपयोग नहीं किया जाता। इसके प्रयोग के बारे में प्राचीन ग्रन्थों में इस प्रकार लिखा हुआ प्राप्त होता है—

पुष्प होय आदित्य को, तब लोजे यह मूल।
शुक्करवारी रोहिणी, ग्रहण होय अनुकूल॥
कृष्ण पक्ष की अष्टमी, हस्त नक्षत्र जो होय।
चौदस स्वाती शतभिषा, पूनम को ले सोय॥
अर्ध निशा कारज करे, मन की शंका खोय।
धूप-दीप कर लीजिए, सिद्धि सबै तब होय॥

अर्थात् रविवार को पुष्प नक्षत्र हो, शुक्रवार को रोहिणी नक्षत्र हो, कृष्णपक्ष को अष्टमी को हस्त नक्षत्र हो, चतुर्दशी को स्वाति नक्षत्र हो अथवा पूर्णिमा को शतभिषा नक्षत्र हो तब अर्धरात्रि में निःशंक होकर धूप-दीप करके रक्तगुंजा की जड़ निकालकर लाये। इस विधि से लाई गई जड़ (मूल) का किस-किस रूप में प्रयोग किया जाए ? इस सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रयोग बतलाये हैं—

जो काहू नर-नारि को, विष कोऊ को होय।
विष उतरे सब तुरत ही, जड़ी पिलावे धोय॥ १॥

यदि किसी पुरुष या स्त्री को किसी प्रकार का जहर चढ़ गया हो, तो उक्त जड़ी को धोकर पिलाने से शीघ्र जहर उतर जाता है।

---

१. श्वेतगुंजा का काम भी इसी प्रकार का है। उसका प्रयोग शुक्लपक्ष की दशमी को लाकर किया जाता है।

तिलक लगावे भाल पर, सभामध्य नर जाय।
मान मिले सब स्तुति करें, सबही पूजैं पाँय।।
हाँ जी, हाँ जी सब करैं, जो वह कहै सो साँच।
एक जड़ी की जुगती से, सभी नचावै नाच।। २ ।।

अर्थात् उक्त लाल घूघची की जड़ को घिसकर मस्तक पर तिलक लगाने से वशीकरण होता है जिसके फलस्वरूप ऐसा तिलकधारी मनुष्य जिस सभा में पहुँचता है वहाँ उसका सम्मान होता है और वह जो भी कहता है, वह सभी सत्य होता है—उसे सभी सत्य मानते हैं। इस प्रकार इस जड़ी के द्वारा स्वेच्छानुसार जैसा चाहे कार्य सिद्ध कर सकता है।

ताँबे मूल मढ़ाय के, बाँधे कम्मर सोय।
नव मासे वो नारि को, निश्चय बेटा होय।। ३ ।।

इस मूलिका को ताँबे के ताबीज में मढ़ाकर जो नारी कटिभाग पर बाँधती है उसे नौ मास में अवश्य ही पुत्र की प्राप्ति होती है।

काजलसूँ घिस आँजिये, मोहे सब संसार।
गाली दे दे ताड़िये, लगा रहे तोय लार।। ४ ।।

इस मूलिका को काजल के साथ घिसकर आँख में अंजन करे, तो इससे सभी व्यक्ति मोहित हो जाते हैं। यहाँ तक कि यदि उक्त अंजन लगाया हुआ व्यक्ति अपने साथ लगे हुए व्यक्ति को गालियाँ देकर भी अलग करना चाहे तब भी वह अलग नहीं होता है।

मधुसूँ अंजन आँजिये, देखै वीर वैताल।
जो मँगावै वस्तु कूँ, लै आवै तत्काल।। ५ ।।

यदि उक्त जड़ी को मधु-शहद के साथ घिसकर अंजन किया जाए, तो उसे वीर वैताल दिखाई देता है और उसके द्वारा जो वस्तु मँगवाई जाती है उसे वह तत्काल लाकर देता है।

जो घिसकर लेपन करै, दूध संग सब अंग।
भूत-प्रेत सब यक्षगण, लगे फिरत सब संग॥ ६॥

यदि इस मूल को दूध में घिसकर उसका सारे अंग पर लेपन किया जाए, तो भूत-प्रेत तथा यक्ष आदि सदा उसके साथ फिरते रहते हैं; अर्थात् उसकी सेवा में उपस्थित रहते हैं।

अंकोल के तैल में घी सह आँजे कोय।
धन देखे पताल को, दिव्य-दृष्टि सो होय॥ ७॥

जो व्यक्ति अंकोल का तैल और घृत इन दोनों में उक्त जड़ी को घिसकर काजल के रूप में अंजन करे वह पाताल में स्थित धन को भी देख सकता है। फिर सामान्य दस-पन्द्रह हाथ की नीचाई वाले द्रव्य की तो बात ही क्या ?

जो बाघिन के दूध में घिसे लगावै अंग।
सर्वशस्त्र लागे नहीं, बढ़कर जीते जंग॥ ८॥

जो व्यक्ति उक्त मूल को बाघिन के दूध में घिसकर शरीर में लगाए, तो उसे किसी भी शस्त्र का वार नहीं लगता है और वह युद्ध में सरलता से विजयी हो सकता है।

घी शक्कर तिल तैल में, मर्द्दन करे शरीर।
दीसे सब संसार को, महावीर रणधीर॥ ६॥

जो इस जड़ को घृत, शकर-चीनी और तिल के तेल में घिसकर शरीर पर उसका मर्दन करे, तो लोगों को वह महावीर और रणधीर जैसा दिखता है।

जो अलसी के तेल में, घिसके हस्त मिलाय।
कोढ़ी कूँ लेपन करे, कंचन तन हो जाय॥ १०॥

जो व्यक्ति इस रक्तगुंजा की जड़ को अलसी के तेल में घिसकर हाथों पर लगाकर कुष्ठवाले के शरीर पर लेप करे, तो उसका शरीर कंचन के समान हो जाता है।

रक्तगुंजा यह कल्प है, सूक्षम कह्यो बनाइ।
जो साधे सो सिद्ध है, यामें संशय नाँहि ।।

(५) वट (बरगद) का तान्त्रिक प्रयोग

वट नीचे वट देखिकै, ताको न्योते जाय।
दीप-दान को लाइये, अर्धरात्रि को ल्याय ।।
न्हाय धोय अरु नग्न ह्वै, खेवै धूप लगाय।
पीछे वाको लीजिये, मन में प्रति बढ़ाय ।।
घर में पोल धराइये, अन्न-धन कोठी माँहि।
देव इष्ट जो पूजिये, रहे लक्ष्मी घर माँहि ।।

अर्थात्—जिस बरगद के पेड़ के नीचे बरगद का दूसरा पौधा निकल आया हो उसे रविपुष्य या गुरुपुष्य आदि से पूर्व सन्ध्या को निमन्त्रित कर आए तथा वहीं एक दीपक लगा दे, बाद में अर्धरात्रि में उसे उखाड़कर उसका मूलभाग घर ले आए[1]। फिर स्नान करके बिना वस्त्र पहिने धूप लगाए और घर में जहाँ अन्न रखा हो उस कोठी में अथवा जहाँ द्रव्य-गहने आदि रखे हों उनमें उसे रख दे तथा ईश्वर का स्मरण करता रहे। ऐसा करने से धन्य-धान्य की पर्याप्त वृद्धि होती है।

विश्वामित्र का कथन है कि रोहिणी नक्षत्र में वट वृक्ष का बन्दा लाकर हाथ में धारण करने से वशीकरण होता है। अर्थात् सब लोग उसके प्रति सद्भाव रखकर कार्यों में सहयोग करते हैं।

---

१. इसी प्रकार अन्य वृक्षों में उन्हीं वृक्षों के नये पौधे निकल आने पर अथवा अन्य जाति के पौधे आ जाने पर उनमें भी दिव्यता आती है और वे तान्त्रिक प्रयोगों के लिये उपयोगी बन जाते हैं। शमी के वृक्षों और पीपल के योग से लकड़ी उत्पन्न से अरणि बनती है जो यज्ञ में अग्नि पदा करने के लिये मथी जाती है।

४ तन्त्र में बन्दे के प्रयोग और सिद्धियाँ

बन्दा प्रत्येक वृक्ष पर उत्पन्न होता है। विहार में इसे बाँझा कहते हैं। आम और बेर का बन्दा तो आसानी से सर्वत्र देखा जा सकता है। आम के बन्दे की पत्तियों को पशुओं को खाने के लिये दिया जाता है, शेष लकड़ी जलाने के काम आती है। आयुर्वेद शास्त्र में चिकित्सा के लिए एकाध बन्दे के उपयोग का निर्देश है, जैसे बेर के बन्दे को पीसकर दही में मिलाकर खाने से आमाशय (Dysentery) ठीक होता है। इत्यादि। किन्तु तन्त्र को छोड़कर अन्य किसी भी विज्ञान में इसके उपयोग पर विस्तार से विचार नहीं किया गया है। तन्त्रशास्त्र बतलाता है कि किन वारों (दिनों) को किन नक्षत्रों तथा तिथियों के योग में किस वस्तु से किस प्रकार का प्रभाव आ जाता है। साथ ही मन्त्र द्वारा इसी प्रभाव को सौ गुना, सहस्र गुना शक्ति-सम्पन्न किया जाता है।

बन्दे के तीन भेद हैं—एक बाल्यस्वरूप जो शीघ्र सिद्ध होता है, दूसरा है **युवा** जो विधिपूर्वक यत्न से सिद्ध होता है और तीसरा **वृद्धसंज्ञक** है जो प्रायः सिद्ध नहीं होता। इनकी प्रयोग-विधि इस प्रकार है—

लक्ष्मी प्राप्ति के लिए आम का बन्दा लाने की विधि

कार्तिक कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को धान और रोली से निमन्त्रण दे आये। दीपावली (अमावस्या) के दिन दूध और बताशे का नैवेद्य चढ़ाकर देवदारु की धूप देते हुए गन्धाक्षत से पूजन करे। पूजन के समय नीचे लिखे मन्त्र को बोलता रहे—

मूले ब्रह्मा त्वचि-विष्णुः, शाखासु च महेश्वरः ।
पत्रे पत्रे देवनाथो वृक्षराज ! नमोऽस्तु ते ॥

फिर वृक्ष को नमस्कार कर सूर्योदय से पूर्व नग्न रहते हुए, अर्थात् धोती का काछा खुला रखकर तोड़ लाये । रात्रि में दीपावली पूजन करके एकान्त में उस बन्दे का पाँच उपचारों से पूजन करे और बाकी रात्रि में नीचे लिखे मन्त्र का जप करे—

ॐ वृक्षराज महाश्रीमन् विष्णुसौख्य सनातन ।
धनधान्य-समृद्धि मे, देहि नित्यं नमोऽस्तु ते ॥

दूसरे दिन प्रातःकाल स्नान करके बन्दे को धूप देकर किसी यन्त्र में धारण करे। धन अक्षय रहता है। लक्ष्मी-मन्त्र का सम्पुट देकर 'विष्णुसहस्रनाम' के १०८ पाठ १० दिन में करने से तथा बाद में हवन करने से यह तन्त्र जागृत रहता है।

(१) जीविका प्राप्ति के लिए पीपल का बन्दा

जब साधक का चन्द्रमा बली हो तब रिक्ता तिथि—(शनिवार को ४, ९ अथवा १४ तिथि होने पर) के दिन पूर्व साँझ के समय पीपल के वृक्ष को निमन्त्रण दे आये। फिर शनिवार को प्रायः सूर्योदय से पहले बन्दे को तोड़ लाये और तब से दूसरी रिक्ता तिथि तक बन्दे की नित्य पञ्चोपचार पूजा करे। फिर उस दिन नीचे लिखे मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर धूप दे और तावीज में रखकर धारण करे—

मूले ब्रह्मा, त्वचि विष्णुः, शाखासु च महेश्वरः ।
पत्रे पत्रे देवनाथो, वृक्षराज ! नमोऽस्तु ते ॥
वृक्षराज नमस्तुभ्यं महाकाय शिखाप्रिय ।
सर्वकष्ट-विनाशाय देहि वान्दमनामयम् ॥

(२) धन-धान्य समृद्धि के लिए पलाश का बन्दा ॥

होलिका के एक दिन पहले सन्ध्या समय बन्देवाले पलाश को

निमन्त्रण देकर होली के दिन प्रातः सूर्योदय से पूर्व बन्दा लाये तथा पुष्पाक्षतादि से पूजन करके देवदारु की धूप दे और मोदक का भोग लगाये। फिर नीचे लिखे मन्त्र को १०८ बार जपकर बन्दे को धन धान्य के साथ रखे—

ॐ वृक्षराज समृद्धस्त्वं, त्रिषु लोकेषु वर्तसे।
कुरु धान्यसमृद्धि त्वं, क्षेत्रे कीटौधर्वाजते॥

यदि धान्य में रखें, तो ऊपर का मन्त्र जप करें और धन में रखें, तो तीसरे-चौथे चरणों को इस प्रकार बदलकर जप करें—

कुरु द्रव्यसमृद्धि मे, गृहे सकटर्वाजते॥

(३) वाक्य की सिद्धि के लिये थूहर का बन्दा—

कृतिकायां स्नुही वृक्षवन्दाकं धारयेत करे।
वाक्यसिद्धिर्भवेत्तस्य महाश्चर्यमिदं स्मृतम्॥

कृत्तिका नक्षत्र में थूहर के वृक्ष का बन्दा लाकर हाथ में (विधि-पूर्वक) बाँधने से वाक्य सिद्धि होती है।

(४) सब प्रकार इच्छासिद्धि के लिए बेर का बन्दा—

अनेन ग्राह्येत स्वाति-नक्षत्रे बदरीभवम्।
वन्दाकं तत्करे धृत्वा यद्वस्तु प्राप्यते नरः।
तत्क्षणात् प्राप्यते सर्वं, मन्त्रवास्तु कथ्यते।

स्वाति नक्षत्र में 'ॐ अन्तरिक्षाय स्वाहा' इस मंत्र से विधिपूर्वक बेर के वृक्ष का बन्दा लाकर हाथ में बाँधे, तो जिन-जिन पदार्थों की इच्छा करेगा वे सब प्राप्त होंगे।

(५) धन-धान्य अक्षय रखने के लिये इमली का बन्दा—

(१) रवि पुष्य से पूर्व शनिवार को निमन्त्रण देकर सूर्योदय से पहले इमली का बंदा लाये तथा उपर्युक्त मंत्र का १००० बार जप कर अन्न-धन में स्थापित करे, तो धन-धान्य की समृद्धि होती है।

(६) इसी प्रकार अन्य बन्दे रखने के प्रयोग एवं फल—

(२) पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में अनार तथा समेर का बंदा रखने से।

(३) मघा नक्षत्र में बहुआर (हरसिंगार) का बंदा रखने से।

(४) हस्त नक्षत्र में निर्गुण्डी का बंदा रखने से।

(५) भरणी नक्षत्र में कुशा का बंदा रखने से।

(६) रोहिणी नक्षत्र में गूलर का बंदा रखने से धन-धान्य की अभिवृद्धि होती है।

सभी बंदे रखने से पूर्व नीचे लिखे मन्त्र का १० हजार जप करें। अन्य विधि पूर्ववत् समझें।

नमः धनदाय स्वाहा

(७) भूमिगत धन प्राप्ति के लिए गूलर का बन्दा

चन्द्र अथवा सूर्यग्रहण वाले दिन से एक दिन पूर्व गूलर के पेड़ को ऊपर बताई हुई विधि से निमन्त्रण दे आये और बाद में ग्रहण के दिन सूर्योदय से पहले शर्बत तथा हलुए का नैवेद्य चढ़ाकर नमस्कार करके बंदा तोड़ लाए। फिर ग्रहण लगते ही बंदे की पञ्चोपचार से पूजा करे और पूरे ग्रहणकाल में 'ॐ महालक्ष्म्यै च विद्महे, विष्णु पत्न्यै च धीमहि तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात्' इस मन्त्र का जप करे। इस जप में कमलगट्टे की माला अधिक फल देने वाली मानी गई है। फिर गूलर के बन्दे को सुवर्ण के यन्त्र (ताबीज) में रखकर धारण करे, तो भूमिगत धन दिखाई दे तथा उसकी प्राप्ति हो।

(८) अदृश्य होने के लिये विविध बन्दे के प्रयोग

(१) अनुराधा नक्षत्र में रोहितक का बंदा लाकर मुख में रखने से।

(२) मृगशिरा नक्षत्र में शाखोट (शिघोर) का बंदा पान के साथ मुँह में रखने से।

(३) भरणी नक्षत्र में कपास का बंदा लाकर हाथ में धारण करने से।

(४) स्वाति नक्षत्र में नीम का बंदा धारण करने से।

(५) अश्विनी नक्षत्र में बेल का बंदा धारण करने से।

(६) मृगशिरा अथवा उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में बेल का बंदा हाथ में धारण करने से मनुष्य अदृश्य होता है।

इन सभी के लिये निम्नलिखित मंत्र का जप होता है—

ॐ नमो भगवते रुद्राय मृतार्कमध्ये संस्थिताय मम शरीरममृतं कुरु कुरु स्वाहा

इसी प्रकार—

(७) शाखोट, आम, गोखरु के बंदे लाकर चौथाई हिस्से नमक में मिलाकर उसे दूध के साथ पीसे। फिर उसका मस्तक पर तिलक लगाए तो गुप्त धन दिखाई देता है।

(८) जब मंगल अष्टम हो और शनिवार को आश्लेषा नक्षत्र हो उस दिन अनार के बीजों का रस, कमल की जड़ तथा शतावरी का रस इन तीनों को शुद्ध करके अंजन तैयार करके लगाये, तो गुप्त धन दिखाई देता है।

(९) विष-निवारण के लिये वनस्पति-प्रयोग

(१) मेष के सूर्य में एक मसूर को दो नीम के पत्तों के साथ खाने से एक वर्ष तक सर्प का भय नहीं रहता है।

(२) श्वेत विष्णुक्रान्ता का फल और मूल दोनों को पीसकर पीने से सर्प का विष उतर जाता है।

(३) उपर्युक्त दोनों वस्तुओं का बंशी आदि वाद्य पर ॐकार का जप करके लेप करे और उसे बजाये तथा विष चढ़ा हुआ मनुष्य उसे सुने, तो उसका जहर उतर जाता है।

(४) श्वेत पुनर्नवा को चावल के पानी के साथ शुभ मुहूर्त में पीने से सर्पदंश का भय नहीं होता है।

(५) आषाढ़ शुक्ल पंचमी को सिरिस की जड़ कमर में बाँधने से तथा चावल का पानी पीने से सर्पदंश का भय नहीं होता है।

उपर्युक्त प्रयोगों के लिये निम्नलिखित मन्त्र को ग्रहण अथवा दीपावली के दिन जपकर सिद्ध करें और फिर वस्तु को अभिमन्त्रित करके प्रयोग करें।

ॐ नमो भगवते उड्डामरेश्वराय काञ्चनामृतार्चितजटाय ठः ठः स्वाहा।

प्रेत-निवारण के लिये

(१) रविवार को काले धतूरे की जड़ बाँह में बाँधने से प्रेतबाधा नष्ट होती है।

(२) लहसुन एकड़िया के रस में हींग पीसकर सुंघाने अथवा अंजन लगाने से प्रेतबाधा शान्त होती है।

(३) रविवार को तुलसीपत्र, कालीमिर्च, (प्रत्येक आठ-आठ) और सहदेई की जड़ लाकर तीनों को तांबे के तावीज में रखें और फिर धूप देकर धारण करें, तो भूतादि बाधा नष्ट हो।

(४) नीम के पत्ते, बच, हींग, साँप की केंचुली और सरसों को गोमूत्र में पीसकर सुंघाने से सर्वविध प्रेतबाधा नष्ट हो।

(५) मुंठी, गोखरू और बिनौला तीनों का समभाग लेकर गोमूत्र में पीसकर बाधाग्रस्त को सुँघाने से बाधा नष्ट हो।

(६) रविवार को विधिपूर्वक शंखाहुली की जड़ लाकर चावल अथवा घी के साथ पीसकर सुंघाने से भी उपर्युक्त बाधा शान्त होती है।

(१०) बिच्छू का जहर उतारने के लिए

रवि, मंगल अथवा शनिवार की अमावस्या के दिन आम के बौर को देखकर तत्काल तोड़ लें और हाथ में खूब मल लें। इसके प्रभाव से केवल हाथ मलकर सुँघाने से बिच्छू का जहर उतर जाता है। इसका प्रभाव एक वर्ष तक रहता है।

५

ग्रहपीड़ा-निवारण के लिए औषधियों के तन्त्र प्रयोग

प्रत्येक ग्रह की दशा ठोक न होने पर उसकी शान्ति के लिए निम्नलिखित औषधियों का प्रयोग उत्तम माना गया है—

(१) **सूर्य** की शान्ति के लिये **बिल्वपत्र** को जड़ रविवार को गुलाबी डोरे में लपेट कर धारण करें।

(२) **चन्द्र** की शान्ति के लिये **खिरनी** की जड़ सोमवार को सफेद ऊन के डोरे में लपेटकर धारण करें।

(३) **मंगल** की शान्ति के लिये **अनन्तमूल** की जड़ मंगलवार को लाल डोरे में लपेटकर धारण करें।

(४) **बुध** की शान्ति के लिये **विधारा** की जड़ बुधवार को हरे डोरे में लपेटकर धारण करें।

(५) **गुरु** की शान्ति के लिए **भारंगी या केले** की जड़ गुरुवार को पीले डोरे में लपेटकर धारण करें।

(६) **शुक्र** की शान्ति के लिए **सरपोंखा** की जड़ शुक्रवार को सफेद डोरे में लपेटकर धारण करें।

(७) **शनि** की शान्ति के लिए **बिच्छ** की जड़ शनिवार को काले डोरे में लपेटकर धारण करें।

(८) **राहु** की शान्ति के लिए **सफेद चन्दन** की जड़ बुधवार को नीले डोरे में लपेटकर धारण करें।

(९) **केतु** की शान्ति के लिए **असगन्ध** की जड़ गुरुवार को आसमानी डोरे में लपेटकर धारण करें।

विशेष—इन जड़ों को लाने और धारण करने की विधि **'मुलिका ग्रहण विधि'** के अनुसार ही है।

ग्रहशान्ति कारक स्नान-विधि

'मेरुतन्त्र' में कुछ औषधियों द्वारा स्नान करने का तान्त्रिक प्रयोग ग्रहों की शान्ति के लिए दिखाया गया है, जिसके प्रयोग से सब प्रकार की शान्ति होकर सुख-समृद्धि प्राप्त होती है। अतः उसका मूल तथा हिन्दी अर्थ यहाँ लिख रहे हैं।

सूर्य—

> करवीर-जपा-मुस्त-देवदारु-मनः शिला।
> केशरैला-पद्मकाष्ठ-मधुपुष्पौध-बालकैः ॥५२॥
> एतज्जापी प्रतिदिनमेतद्युक्तजलैश्चरेत् ॥
> स्नानं सूर्यस्य सन्तुष्ट्यै दुष्टो वा यस्य भास्करः ॥ ५३ ॥

सूर्य की शान्ति के लिए तथा यदि वह दुष्ट स्थान पर स्थित हो, तो उसकी प्रसन्नता के लिए कनेर, दुपहरिया, नागरमोथा, देवदारु, मेनसिल, केशर, इलायची, पद्माख, महुवा के फूल और सुगन्धबाला के द्वारा (इनका चूर्ण बनाकर) भगवान् सूर्यनारायण का स्मरण करते हुए स्नान करे।

चन्द्र—

> पञ्चगव्यं च रजतं मौक्तिकं शंख-शुक्तिके।
> कुमुदानि जले क्षिपत्वा स्नानं चन्द्रस्य तुष्टये॥ ६६ ॥

चन्द्र की प्रसन्नता के लिए पञ्चगव्य, चाँदी, मोती, शंख, सीप और कुमुद को पानी में डालकर उससे स्नान करे।

सूर्यादि नवग्रहों के वैदिक एवं पौराणिक मन्त्रों के लिए देखिए हमारी अन्य पुस्तक—'मन्त्रशक्ति'

मंगल—

विश्वम्बला चन्दनं च रामठासनपुष्पकम् ।
फलिनी-बकुलैर्युक्तं स्नानं भौमस्य तुष्टये ।। ७३ ।।

सोंठ, सोंफ, लाल चन्दन, सिंगरफ, मालकांगनी और मौलसरी के फल मिलाकर मंगलग्रह को प्रसन्नता के लिए स्नान करे।

बुध—

हरितकी-कलिफलैर्गोमयाक्षत-रोचनैः ।
स्वर्णामलक-मुक्ताभिर्युक्तैः सक्षौद्रकैः स्नपेत् ।। ८९ ।।

हरड़े, बहेड़ा, गोमय, अक्षत, गोरोचन, स्वर्ण, आँवले और मध मिलाकर बुध की प्रसन्नता के लिए स्नान करे।

गुरु—

मदयन्तीपल्लवश्च मधुकं श्वेतसर्षपाः
मालती पुष्पयुक्ताश्च स्नानेन गुरुतोषणम् ।। ३३ ।।

मदयन्ती के पत्र, मुलैठी, सफेद सरसों और मालती के पुष्पों को जल में मिलाकर स्नान करने से गुरु की प्रसन्नता होती है।

शुक्र—

समूलं त्रिफला चैला, केशरञ्च मनः शिला।
एभिर्युतैर्जलैः स्नायाद् भार्गवस्थ तु तुष्टये ।।

शुक्रदेव की प्रसन्नता के लिए मूल सहित हरड़े, बहेड़ा और आँवला, इलायची, केशर और मेनसिल इन्हें जल में मिलाकर स्नान करे।

शनि—

रसाञ्जनं कृष्णतिलाः शतपुष्पा घनोबला ।
लज्जालु-लोध्रमुक्ताभिरद्भिः स्नानं शनेर्मुदे ।।

सुरमा, काले तिल, सोंफ, नागरमोथा और लोध मिले हुए जल से स्नान करना शनि की प्रसन्नता के लिए होता है।

राहु—

नागवल्ली नागबला-कुमारोचक्रभास्करैः ।
वचा-गडूचीतगरैः स्नानं स्यात् राहुतुष्टये ॥

नागवेल, लोबान, तिल के पत्र, वचा, गड़ूची और तगर के मिश्रण से युक्त जल से राहु की प्रसन्नता के लिए स्नान करना चाहिए।

केतु—

सहदेवी च लज्जालु-बल-मुस्तप्रियङ्गवः ।
एतद्युक्तजलस्नानात् प्रसीदति सदा शिखी ॥

सहदेई, लज्जालु (लोबान), बला, मोथा और प्रियंगु-हिंगोठ से मिश्रित जल द्वारा स्नान करने से केतु सदा प्रसन्न रहते हैं ।

सभी ग्रहों के दोषों की निवृत्ति के लिए

लाजवन्ती, छुईमुई, कूट, खिल्लां, काँगनी, जब सरसों, देवदारु, हलदी, सर्वोषधि तथा लोध इन सब औषधियों को मिलाकर तीर्थ के जल सहित नित्य प्रातः स्नान करने से ग्रहों की शान्ति और सुख-समृद्धि प्राप्त होती है।

शास्त्रों में कहा गया है कि--

यथा सिद्धौषधै रोगा नश्येयुर्मन्त्रतो भयम् ।
तथा स्नान-विधानेन ग्रहदोषः प्रणश्यति ॥

जैसे सिद्ध औषधियों के सेवन से सभी प्रकार के रोग नष्ट होते हैं तथा मन्त्र द्वारा भय का नाश होता है, उसी प्रकार उपर्युक्त स्नान-विधान से ग्रहों का दोष नष्ट होता है ।[1]

१. इसी प्रकार नक्षत्रों की पृथक्-पृथक् औषधियां भी निर्दिष्ट हैं जिनका उपयोग नक्षत्रों की शान्ति के लिए किया जाता है।

६ एकाक्षि-नारिकेल-कल्प

तन्त्रशास्त्रों में विभिन्न उत्तम वस्तुओं के विधान में एकाक्षि-नारिकेल--एक आँखवाले श्रीफल-नारियल का विधान भी कल्प के रूप में प्राप्त होता है। ऐसे श्रीफल के लिए कहा गया है कि—

द्विजटश्चैकनेत्रस्तु नारिकेलो महीतले।
चिन्तामणि-समः प्रोक्तो वाञ्छितार्थप्रदानतः॥

अर्थात् "दो जटा और एक नेत्रवाला नारियल पृथ्वी पर इच्छित वस्तुओं को देने के कारण 'चिन्तामणि' के समान कहा गया है।" और साथ ही यह भी कहा गया है कि—

चिन्तामणिः प्रस्तरतुल्यभावः,
सम्मन्यतां धन्यतमः स्वचित्ते।
यश्चैकनेत्रो द्विजटी सुपक्वः,
स नालिकेरः कृतिनोऽस्ति गेहे॥

अर्थात् जो एक नेत्र एवं दो जटावाला सुपक्व नारियल है वह चिन्तामणि के समान प्रभावशाली तथा धन्यतम है। ऐसा अपने चित्त में मानो (और उसकी उसी भाव से आराधना करो)। ऐसा नारियल भाग्यशाली के घर पर ही होता है।

अतः इसका कल्प यहाँ दे रहे हैं।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि नालिकेरं विधानतः।
शुद्धमेकाक्षिकं चैतत् सर्वसिद्धिप्रदायकम्॥१॥

अब मैं विधानपूर्वक शुद्ध तथा सर्वसिद्धि को देने वाले एकाक्षि-नारिकेल का विधान कहता हूँ ।। १ ।।

छिद्रद्वयं तु रेखायमुद्भवाय स्वरूपतः ।
दृष्टिगोचरमात्रेण स स्वरूपं प्रकाशयेत् ।।२।।

(वह एकाक्षि-नारिकेल) अपने स्वरूप से प्रकट होने के लिए रेखा में दो छिद्रवाला ज्ञात होता है; किन्तु उसके देखने मात्र से वह स्वरूप को प्रकाशित कर देता है ।। २ ।।

आधिभूतादि-व्याधोनां रोगादि-भयहारिणिम् ।
विधिवत् क्रियते पूजा, सम्पत्ति-सिद्धिदायकम् ।।३।।

आधिमानसिक चिन्ता, भूतादि उपद्रव से उत्पन्न व्याधियाँ तथा विविध प्रकार के रोगों को दूर करने वाले श्रीफल की विधिवत् पूजा करने पर वह सम्पत्ति और सिद्धि को प्रदान करता है ।। ३ ।।

नत्वां तं श्रीफलं च श्रीँ ह्रीँ क्लीँ भास्कर-संयुतम् ।
महाप्रमाणयुक्तं च नान्यथा श्रमणोच्यते ।।४।।

फिर उस श्रीफल को नमस्कार करके (उस पर) श्रीँ ह्रीँ क्लीँ बीजों को ॐकार सहित लिखे । हे श्रमण ! इससे ही वह श्रीफल महान् कहा जाता है, अन्यथा नहीं ।। ४ ।।

गुह्यं भेदप्रकाशं मे किञ्चित् सद्गुरुभाषितम् ।
तद् यथा लिपिकृत्वाऽमी स स्यात् सिद्धिदायकः ।। ५ ।।

सद्गुरु द्वारा कथित कुछ स्पष्टीकरण मुझसे ग्रहण करो । वह यह है कि ऊपर दिखाये अनुसार बीजमन्त्रों के लिखने से ही वह श्रीफल सिद्धिदायक होता है ।।

प्रभावात् पूज्ये देवी रण-राज्य-भयं तथा ।
पुष्यार्के नाशयेत् सत्यं कार्यसिद्धि करोति च ।। ६ ।।

उस श्रीफल पर रविपुष्य के दिन देवी की पूजा की जाती हे, तो

युद्ध और राज्य के भय का नाश तथा कार्यसिद्धि को करता है। यह सत्य है।। ६ ।।

पञ्चामृतं समाश्रित्य, गङ्गोदकेन स्नापयेत्।
घृतसिन्दूरतो लिप्त्वा, नागसूत्रं च वेष्टयेत्।। ७ ।।

उस श्रीफल को गंगाजल से तथा पञ्चामृत से स्नान कराये। बाद में घृत और सिन्दूर का लेप करके नागसूत्र-मौलि लपेट दे।। ७ ।।

तस्माच्च क्रियते पूजा, नवैद्यं विधिनाऽर्पयेत्।
गुग्गुलुधूपं घृतज्योतिः, पूजयेद् श्रीफलं तथा ।। ८ ।।

फिर (गन्ध, अक्षत, पुष्प, गुलाल, अबीर आदि से) श्रीफल की पूजा की जाती है। पूजा के पश्चात् विधिपूर्वक नैवेद्य अर्पित करे। गूगल की धूप और घी का दीपक जलाये ।। ८ ।।

त्रिधामात्रां च गायत्रीं मूलमन्त्रं महाद्युतिम्।
अष्टबीजाक्षरं ध्यात्वा स्वेष्टासिद्धिमवाप्नुयात्।। ९ ।।

महान् ज्योतिर्मय गायत्री-मन्त्र और श्रीफल का आठ बीजाक्षर रूप मन्त्र इनका स्मरण करने से सब प्रकार की सिद्धि प्राप्त होती है।। ९ ।।

विशेष—श्रीफल की पूजा के समय निम्नलिखित श्लोक का पाठ करते रहना चाहिए—

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भुवनेष्वलक्ष्मीः, ।
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।
श्रद्धा सतां कुलजन-प्रभवस्य लज्जा,
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि ! विश्वम्।।

मन्त्रपुरश्चरण—उत्तम पर्व के दिनों में, नवरात्रि में अथवा किसी शुभ मुहूर्त में पुरश्चरण के लिए नीचे बताये अनुसार विशेष पूजा करे। यह प्रयोग सात दिन का है। इसमें कस्तूरी २ माषा, गोरोचन ३ मा०, अम्बर १ मा०, मोथा ३ मा०, अगर ३ मा०, केशर ३ मा०

बरास कपूर आधा तोला ये सब वस्तुएँ पञ्चामृत में मिलाकर सात दिन तक श्रीफल पर (मूलमन्त्र अथवा ऊपर बताए हुए श्लोक से) अभिषेक करें। बाद में श्रीफल ७, पान १२७, खारेक (छुहारा) १२७, खोपरा (गोले के टुकड़े) १२७, मिश्री के टुकड़े १२७, लौंग, दाल, केला, सन्तरे नींबू ये सभी ७-७ की संख्या में अर्पित करे। लालवस्त्र ७ हाथ और चावल ७ किलो चढ़ाए ७ दिन तक अखण्ड घृतदीप जलाये।

जप करने का मूल मन्त्र इस प्रकार है—

(१) **ॐ ऐँ ह्रीँ श्रीँ क्लीँ सौः क्लीँ ॐ।**

(२) **ॐ श्रीँ ह्रीँ ऐँ एकाक्षिश्रीफलाय भगवते विश्व-रूपाय सर्व युगेश्वराय त्रैलोक्यनाथाय सर्वकामप्रदाय नमः।**

श्रीफल के नीचे यन्त्र रखने का विधान भी कहीं-कहीं प्राप्त होता है। उसके लिए नीचे लिखे यन्त्रों में किसी एक को सोना, चाँदी, ताँबा अथवा भोजपत्र पर यन्त्र लिखकर प्राणप्रतिष्ठा करके उस पर श्रीफल रखें।

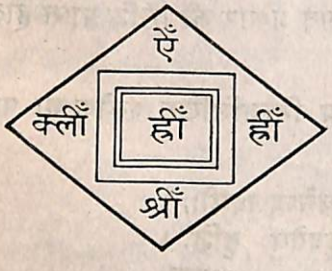

अन्य प्रयोग

(१) चैत्र शुक्ला अष्टमी के दिन मूलमन्त्र बोलते हुए चन्दनादि से पूजन कर १०८ लाल पुष्प चढ़ाने से सर्वसिद्धि प्राप्त होती है।

(२) एकाक्षि श्रीफल पर नवरात्रि में अभिषेक करके उस जल को

६ दिन तक वन्ध्या-स्त्री को पिलाने से पुत्र की प्राप्ति होती है।

(३) श्रीफल के मन्त्र द्वारा सुगन्धित वस्तु (इत्र) चढ़ाकर उसकी सुगन्धि लेने से रोग-शान्ति होती है।

(४) नित्यपूजा एवं १०८ मन्त्र जप से लक्ष्मी प्राप्ति होती है।

(५) दीपावली के दिन पूजन करने से विजय होती है।

(६) दीपावली के दिन रात्रि में श्वेत पुष्पों से १००८ मन्त्र बोल कर पुष्प चढ़ाने तथा १० माला मंत्र की जपने से सब प्रकार के कष्ट और विघ्न नष्ट होते हैं।

(७) अश्विन शुक्ल पक्ष और चैत्र शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा से अष्टमी तक पूजन और नित्य जप करने से मन्त्र सिद्ध होता है। इसी प्रकार सूर्य चन्द्र ग्रहण काल में भी स्पर्श से मोक्ष के समय तक जप करने से मन्त्र-सिद्धि होती है।

(८) **ॐ श्रीँ ह्रीँ क्लीँ ऐँ महालक्ष्मीस्वरूपाय एकाक्षिनारिकेलाय नमः, सर्वसिद्धि कुरु-कुरु स्वाहा।**

ऊपर बताए हुए मन्त्र को रेशमी वस्त्र पर अष्टगंध अथवा केशर से दाडिम की कलम द्वारा लिखकर उस पर एकाक्षिश्रीफल की स्थापना करे। फिर ऊपर लिखे हुए मन्त्र से षोडशोपचार पूजन करके प्रातः और सायं १-१ माला मन्त्र का जप करे, तो लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

(९) **ॐ ऐँ ह्रीँ ऐँ ह्रीँ श्रीँ एकाक्षिनारिकेलाय नमः।** इस मन्त्र द्वारा पूजन और जप करने से वशीकरण होता है।

(१०) **ॐ ऐँ एकाक्षिनारिकेलाय नमः। (अमुकम्) उच्चाटयोच्चाटय स्वाहा।** इस मन्त्र द्वारा मंगलवार से प्रारम्भ करके १५ दिन तक भोरींगणी के पुष्पों से पूजा करने और शत्रु के उच्चाटन का संकल्प करके (नित्य १०८) जप करने से इच्छासिद्धि होती है।

(११) **ॐ ह्रीँ श्रीँ एकाक्षिनारिकेलाय नमः।** यह मन्त्र शुक्रवार

से सात दिन तक जूही के १०८ पुष्पों से पूजा तथा १०८ बार नित्य जपने से सर्व प्रकार के ज्वरों को शान्त करता है।

(१२) ॐ ह्रीँ ब्लूँ एकाक्षिनारिकेलाय नमः। इस मंत्र द्वारा २१ बार पानी को अभिमन्त्रित करके पिलाने से सुखपूर्वक प्रसव होता है।

(१३) ॐ ह्रीँ ऐँ एकाक्षिनारिकेलाय नमः। इस मन्त्र से श्रीफल पर १०८ कनेर के पुष्प ५ दिन तक चढ़ाकर १००८ मन्त्र जप करने से स्वप्न में भविष्य का ज्ञान होता है।

(१४) ॐ भ्रूँ क्रोँ एकाक्षिनारिकेलाय नमः। रविवार से आरम्भ करके ११ दिन तक इस मन्त्र का जप करते हुए जासूद के १०८ पुष्प चढ़ाने और १० माला जप करने से लक्ष्मी प्राप्ति होती है।

(१५) ॐ ऐँ ह्राँ श्रीँ एकाक्षिनारिकेलाय नमः। २१ दिन तक १०८ नित्य जप तथा १०८ पुष्पों से पूजा करने से ग्रह-दोष शान्त होता है।

(१६) ॐ ऐँ ह्रीँ श्रीँ ह्रीँ एकाक्षिनारिलेलाय नमः। इस मन्त्र द्वारा १०८ चम्पे के पुष्प चढ़ाने और सात दिन तक जप करने से स्वप्न में शुभाशुभ का ज्ञान होता है।

(१७) ॐ ह्रीँ हूँ एकाक्षिनारिकेलाय नमः। इस मन्त्र से मरवा के १०८ पुष्प सात दिन तक चढ़ाने और १ माला जप करने से सर्व दुष्टों का मुखस्तम्भ होता है।

(१८) ॐ श्रीँ ह्रीँ क्लीँ ज्ञँ ह्रोँ भ्रँ एकाक्षिनारिकेलाय नमः। इस मंत्र द्वारा लाल कनेर के १०८ पुष्पों से सात दिन तक पूजा जप करके मन्त्र सिद्ध करे। बाद में चूना-कत्था-सुपारी सहित तैयार किये हुए पान को मन्त्रित करके खिलाने से वशीकरण होता है।

(१९) ॐ जंभिणो ह्रीँ ग्लौँ एकाक्षिनारिकेलाय नमः। इस मन्त्र का सोमवार से सोमवार तक १०८ आम के मौर चढ़ाकर जप

करने से पति का वशीकरण होता है।

(२०) ॐ ह्रीं एकाक्षिनारिकेलाय नमः। मंगलवार से मंगलवार तक नींबू के १०८ पुष्पों द्वारा इस मन्त्र का जाप करते हुए पूजन करने और जप करने से सब प्रकार की प्रेतबाधा नष्ट हो जाती है।

(२१) ॐ ह्रौं ह्रां ह्रीं ह्रां ह्रीं ह्रः ह्रः एकाक्षिनारिकेलाय नमः। इस मन्त्र द्वारा प्रतिदिन २१ बार जप करके मुँह धोने में सभा में विजय तथा आनन्द प्राप्त होता है।

मन्त्र की पुरश्चरणात्मक शान्ति

उपर्युक्त मन्त्रों में से किसी भी मन्त्र का जप पूर्ण होने पर खीर, धत और तिल से हवन करके शान्ति करनी चाहिए तथा यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन अथवा बालकों को प्रसाद बाँटना चाहिए।[1]

---

१. यह प्रयोग जैन सम्प्रदाय के अनुसार भी है। तथा यही प्रयोग कुछ पाठान्तरों के साथ '**कृष्णयामल**' में भी प्राप्त होता है, ऐसा विद्वानों का कथन है। इसी प्रकार '**एकमुखी रुद्राक्ष**' की साधना के लिए भी कल्प बना हुआ है, किन्तु विस्तार भय से नहीं दे रहे हैं। और ऐसी ही अन्य '**हाथा जोड़ी**' '**गीदड़सिंगी**' '**गोरचन**' आदि वस्तुओं के कल्प की साधनाएँ भी यत्र-तत्र प्रचलित हैं।

७ | रत्न–धारण तन्त्र

जिस प्रकार तन्त्रों में जड़ी-बूटियों के धारण द्वारा धन-प्राप्ति, रोग-निवारण, शत्रु-नाश तथा अन्यान्य सुख-सुविधा प्राप्ति के उपाय दिखाये गये हैं, उसी प्रकार रत्नों के धारण करने का विधान भी बतलाया गया है। ज्योतिष एवं आयुर्वेद के ग्रन्थों में तन्त्रशास्त्रों से ही प्रेरणा लेकर रत्नों के धारण तथा उनकी भस्म आदि खाने का प्रयोग दिखाया गया है। रत्न भारतीय साहित्य में बहुत ही महत्वपूर्ण माने गये हैं। जन्ममास, जन्मतिथि, जन्मवार और ग्रहदशा के आधार पर रत्न-धारण का विधान ज्योतिष-शास्त्र में है जबकि प्रमुख-प्रमुख रोगों से मुक्ति पाने के लिए रत्नों का औषधि के रूप में प्रयोग आयुर्वेद शास्त्र का विषय है। तन्त्र-शास्त्र इन दोनों स्थितियों में यह आदेश देता है कि रत्न को पहले मन्त्र द्वारा तेजस्वी बनाकर उसे विधिवत् उपयोग में लाओगे, तो वास्तविक लाभ होगा। अतः यहाँ रत्न धारण के सम्बन्ध में संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

हमारे विद्वानों ने रत्नों को महारत्न एवं उपरत्न के रूप में दो भागों में बाँट दिया है। इनमें महारत्न निम्नलिखित माने गये हैं—(१) माणिक्य, (२) मोती, (३) हीरा, (४) नीलम और (५) पन्ना। शेष उपरत्न हैं। नवरत्नों में क्रमशः उपर्युक्त पाँच के अतिरिक्त (६) प्रवाल (मूंगा), (७) पुखराज, (८) गोमेद और (९) वैदूर्यमणि (लाजवर्त) का समावेश होता है। वैसे रत्न पारखियों ने ८४ प्रकार के रत्न माने हैं।

जन्म मास के आधार पर निम्नलिखित रत्न धारण करने चाहिएँ—

जन्म मास (अंग्रेजी)	धारण करने योग्य रत्न
१. जनवरी	लाल मणि गार्नेट
२. फरवरी	एमीथिस्ट
३. मार्च	ब्लड स्टोन या एक्वामेरीन
४. अप्रैल	हीरा
५. मई	पन्ना
६. जून	मोती या चन्द्रकान्त
७. जुलाई	माणिक्य
८. अगस्त	सौरडोनिक्स या पेरीडाट
९. सितम्बर	नीलम
१०. अक्तूबर	उपल या टर्मेलीन
११. नवम्बर	पीला पुखराज या सुनैला
१२. दिसम्बर	लाजावर्त या फीरोजा

जन्मतिथि (तारीख) के अनुसार रत्न धारण

जन्म तारीख	सूर्य की राशि	रत्न
१५ अप्रैल से १४ मई तक	मेष	मूंगा
१५ मई से १४ जून तक	वृषभ	हीरा
१५ जून से १४ जुलाई तक	मिथुन	पन्ना
१५ जुलाई से १४ अगस्त तक	कर्क	मोती
१५ अगस्त से १४ सितम्बर तक	सिंह	माणिक्य
१५ सितम्बर से १४ अक्तूबर तक	कन्या	पन्ना
१५ अक्तूबर से १४ नवम्बर तक	तुला	हीरा
१५ नवम्बर से १४ दिसम्बर तक	वृश्चिक	मूंगा
१५ दिसम्बर से १४ जनवरी तक	धनु	पीला पुखराज
१५ जनवरी से १४ फरवरी तक	मकर	नीलम
१५ फरवरी से १४ मार्च तक	कुंभ	गोमेद
१५ मार्च से १४ अप्रैल तक	मीन	लहसुनिया

नवग्रहों के अनुसार रत्न धारण

(१) सूर्य	माणिक्य (पद्मराग)
(२) चन्द्र	मोती (मुक्ता)
(३) मंगल	मूँगा (प्रवाल)
(४) बुध	पन्ना (मरकत)
(५) गुरु	पुखराज (पुष्पराज)
(६) शुक्र	हीरा (वज्र)
(७) शनि	नीलम
(८) राहु	गोमेद (स्फटिक)
(९) केतु	लहसुनिया (वेडूर्य मणि)

उपर्युक्त दृष्टि से ग्रहयोग देखकर रत्न धारण करना चाहिए। इस सम्बन्ध में दोनों दृष्टियाँ प्राप्त हैं जिनमें कुछ आचार्य जन्म कुण्डली में अशुभ अथवा दुर्बल ग्रह को सबल बनाने के लिए और अन्य आचार्य शुभ ग्रह को और शुभ बनाने के लिए रत्नधारण का निर्देश देते हैं। इस सम्बन्ध में हमारा मत यह है कि कोई भी व्यक्ति अपने शुभ के लिए ही कुछ करता है और श्रद्धा एवं विश्वास उसमें आतमबल को बढ़ाते हैं तथा इनके आधार पर ही अशुभ में भी शुभ भाव उत्पन्न हो जाते हैं। फिर भी किसी जानकार से सलाह लेकर कार्य करें।

रत्नधारण विधि

मुख्य रूप से रत्नों को गले में, हाथ के आभूषणों में और अंगूठी में पहनते हैं। अँगूठी में ऐसे रत्न जो धारण किए जाएँ उनका भार कम से कम ढाई रत्ती होना चाहिए और जहाँ तक सम्भव हो ये रत्न शुद्ध, निर्दोष और बिना छिद्रवाले लिए जाएँ। धारण करते समय इनके

इन रत्नों की विशेष जानकारी के लिए देखिए 'रत्न-प्रदीप''—ले. डॉ. गौरीशंकर कपूर, प्रकाशक, रंजन पब्लिकेशन्स १६, अन्सारी रोड, नई दिल्ली-२

किसी अंश का शरीर की त्वचा से स्पर्श भी आवश्यक है। साथ ही ग्रहों की आकृति के समान ही धातु, वर्ण, आकार और दिन, समय आदि देखकर उन-उन ग्रहों के मन्त्र जपकर धारण करने से पूर्ण लाभ होता है। इसके लिए निम्नलिखित तालिका उपयोगी होगी।

ग्रहनाम	रत्न	धातु	रत्न का वजन	धारण स्थान	समय
सूर्य	माणिक्य	सोना	३ रत्ती	दाहिने हाथ की तर्जिनी	सूर्योदय
चन्द्र	मोती	चाँदी	२ ,,	दाहिने हाथ की कनिष्ठिका	सन्ध्या
मंगल	मूँगा	सोना	६ ,,	अनामिका	सूर्योदय के एक घण्टे बाद
बुध	पन्ना	चाँदी सोना	३ ,,	दाहिने हाथ की कनिष्ठिका	सूर्योदय के २ घण्टे बाद
गुरु	पुखराज	सोना	६ ,,	,, ,, तर्जनी	सूर्यास्त से एक घण्टे पूर्व
शुक्र	हीरा	चाँदी सोना	१½ ,,	,, ,, कनिष्ठिका	प्रातः
शनि	नीलम	स्टील (पंचधातु)	४ ,,	,, ,, मध्यमा	सूर्यास्त से २ घण्टे पूर्व
राहु	गोमेद	चाँदी (अष्टधातु)	४ ,, ४ ,,	,, ,,	सायं २ घण्टे बाद
केतु	लहसुनिया	चाँदी	४ ,,	,, ,, मध्यमा या कनिष्ठिका	अर्ध रात्रि

ग्रहों के मन्त्र हमने '**मन्त्र शक्ति**' नामक ग्रन्थ में जप संख्या सहित

दिये हैं, अतः वहीं देखें । कुछ रत्नों के साथ अन्य ग्रहों के रत्न धारण करने का निषेध भी है जिसका विचार इस प्रकार है—

१. माणिक्य के साथ हीरा, नीलम, गोमेद और लहसुनिया न पहनें ।
२. मोती के साथ हीरा, पन्ना, नीलम, गोमेद और वैडूर्य न पहनें ।
३. मूँगे के साथ पन्ना, हीरा, गोमेद और वैडूर्य न पहनें ।
४. पन्ने के साथ मूँगा और मोती न पहनें ।
५. पुखराज के साथ हीरा, नीलम, गोमेद और वैडूर्य न पहनें ।
६. हीरे के साथ माणिक्य, मोती 'मूँगा और पीला पुखराज न पहनें ।
७. नीलम के साथ माणिक्य, मोती, पीला पुखराज ओर मूँगा न पहनें ।
८. गोमेद के साथ माणिक्य, मूँगा और पुखराज न पहनें ।
९. वैडूर्य के साथ माणिक्य, मूँगा, मोती और पुखराज न पहनें ।

रत्नधारण से पूर्व शुभाशुभ परीक्षा

किसी भो रत्न को धारण करने से पूर्व उसकी शुभाशुभ परीक्षा के लिए ग्रह के रंग का वस्त्र लेकर रत्न को कच्चे दूध और गंगाजल से धोकर उस ग्रह का मन्त्र जप करके रात्रि में सोने से पूर्व भुजा पर इस ढंग से बाँधे जिससे रत्न त्वचा का स्पर्श करता हो । फिर रात्रि में जैसे स्वप्न आयें उनके अनुसार फल जानें । ऐसा दो तीन दिन तक करना चाहिए । मानसिक विचारों में परिवर्तन, आय-व्यय में नवीनता और शुभाशुभ समाचारों की प्राप्ति से यह परीक्षा हो जाती है ।

जिस ग्रह का रत्न पहनना हो उसके वार को शुक्ल पक्ष की श्रेष्ठ तिथि, नक्षत्र आदि के अनुसार अंगूठी को कच्चे दूध में अथवा गंगाजल में डुबो दें, बाद में नीचे लिखे हुए मन्त्र से उसकी विधिवत् पूजा करें—

ॐ परिवाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्व्यक्रमीत् ।
दधद् रत्नानि दशुषे ॥

पूजा में स्नान, गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य अर्पित कर

प्रणाम करें। फिर मन्त्र जप करके उसे पहन लें। अपवित्र कार्यों में अंगूठी निकाल कर रख दें।

तान्त्रिक अंगूठियाँ और कंकण (कड़े)

आजकल बहुत से लोग रत्नों की अंगूठियाँ न पहन कर केवल धातुओं की अंगूठी या कड़ा भी पहनते हैं। इनमें कुछ अष्टधातु या पंचधातुओं की होती हैं, तो कुछ सोना, चाँदी, ताँबा और लोहे से बनी होती है। तन्त्रों से प्रत्येक देवी-देवताओं की उपासना के अनुसार उन के यन्त्र, बीजमन्त्र अथवा आकार का निर्देश है। अतः साधकों को उनके अनुसार ही अंगूठो बनाकर पहनने का आदेश दिया गया है। वैसे इष्ट-देव की मूर्ति, पन्द्रह या बीस अंक का यन्त्र, त्रिकोण, चतुष्कोण, अष्ट-कोण और वृत्तरूप में षट्कोण आदि बनाकर भी अंगूठियाँ पहनते हैं। कुछ अंगूठियों में ह्रीँ, श्रीँ, ॐ, क्लीँ, आदि बीजमन्त्र खुदवाकर भी पहना जाता है। इन सब के धारण की विधि ऊपर कहे अनुसार है, केवल विशेषता इतनी है कि जिस देवता से सम्बद्ध अंगूठी हो उसी के मन्त्र का उस पर विशेष जप-ध्यान किया जाता है।

वलय-कंकण पहनने का विधान भी अति प्राचीन है। वीर कंकण, कवच आदि का निर्देश तन्त्र शास्त्रों में बहुधा प्राप्त है। ये वलय भी लोहा, ताँबा अष्टधातु और चाँदी-सोने के बनते हैं। गोल तार अथवा चपटी पट्टी के रूप में ये बनाकर पहने जाते हैं। इन्हें अभिमन्त्रित कर पहनने से भूत-प्रेत बाधा निवारण तथा शत्रुओं अथवा अन्य किसी रूप में दिये गये तन्त्र-प्रयोगों से रक्षा होती है। बीमारी से बचने के लिए भी इनका प्रयोग उत्तम माना गया है।

इन्हीं के आधार पर ताबीज बनते हैं जिनमें भोजपत्र पर यन्त्र-मन्त्र लिखकर अथवा किसी वस्तु-बिशेष को रखकर अभिमन्त्रित करके पहनते हैं। नवरात्र में लगाये गये जुआरे में उगे हुए सफेद अंकुर,

व्याघ्र आदि के नख, देवताओं पर चढ़े हुए द्रव्य का अंश भी ताबीज में रखकर धूप देकर गले आदि में पहनने का प्रचलन है।

कवच आदि धारण करने की विधि

उपर्युक्त कोई भी वस्तु जब तैयार कर लें, तो सर्वप्रथम उसका संस्कार करें, स्वस्तिवाचनपूर्वक इष्टदेव को नमस्कार करें। गणपति स्मरण करके संकल्प करें कि—ॐ तत्सद्येत्यादि० अमुके मासे अमुके पक्षे, अमुकतिथौ वारे च अमुकगोत्रः शर्माऽहं देवताय अमुक कार्यसिद्ध्यर्थं कवचधारणार्थं अमुकदेवताकवचसंस्कारमहं करिष्ये। (दूसरे के लिए करना हो, तो अमुकार्थे करिष्यामि ऐसा बोले।) तदनन्तर 'ह्रौं" बीज का १०८ बार जप करके कवच को पञ्चगव्य (गोमूत्र, गोमय, गोघृत, गोदुग्ध और गोदधि) से कवचादि का प्रक्षालन करे। बाद में मूल (अपने इष्टदेव के) मन्त्र द्वारा जल मिले हुए दूध से स्नान कराये, फिर पंचामृत से स्नान कराये तथा पाँच कषाय १. बरियार २. बेर ३. जामुन ४. मोरसली तथा ५. सेवल के चूर्ण को पानी में मिलाकर उससे कवच को धोए। तब एक दर्भ-डाभ लेकर उससे कवच पर जल छिड़कते हुए '**कवचराजाय विद्महे महाकवचाय धीमही तन्नो कवचः प्रचोदयात्**' इस कवच गायत्री का पाँच बार पाठ करे। इसके पश्चात् कवच में इष्टदेव की प्राण प्रतिष्ठा करे। फिर यथाशक्ति इष्टदेव के मन्त्र का जप कर दशांश हवन करे और हवन के घृत का कवच पर लेप करके उसे हवन की अग्नि से तपाकर यथाशक्ति दान करके धारण करे।

ऐसे सिद्ध कवचों को यदि नित्य धारण न कर सकें, तो पूजास्थान में रख दें तथा नित्यपूजा करते रहें और आवश्यकता पड़ने पर इस को धोकर जल पी लें और जो भी संकट में हो उसे पिलायें, तो वह संकट से मुक्त होता है।

———

८ | दक्षिणावर्त-शंख कल्प

शंख महिमा

भारतीय संस्कृति और धर्म में शंख का बड़ा महत्त्व है। विष्णु के चार आयुधों में शंख को भी एक स्थान मिला है। मन्दिरों में आरती के समय शंखध्वनि का विधान है तथा प्रत्येक तान्त्रिक पूजा में शंख के द्वारा अभिषेक का माहात्म्य है। विवाह तथा शवयात्रा, युद्ध एवं अन्य पुण्यकर्मों के आरम्भ में भी शंखध्वनि को पवित्र माना गया है। अथर्ववेद के चौथे काण्ड में १० वाँ सूक्त '**शंखमणि सूक्त**' के नाम से प्रसिद्ध है। इस सूक्त के ऋषि अथवा तथा शंखमणि हैं। सूक्त के ७ मन्त्रों में कहा गया है कि—

यह शंख अन्तरिक्ष, वायु, ज्योतिर्मण्डल एवं सुवर्ण से उपलब्ध है। इसकी ध्वनि शत्रुओं को निर्बल करने वाली है। यह हमारा रक्षक है। समुद्र से उत्पन्न यह शंख राक्षसों और पिशाचों को वशीभूत करने वाला, रोग, अज्ञान एवं अलक्ष्मी को दूर भगाने वाला तथा आयु का वर्द्धक है। यह चन्द्रमा अमृतमण्डल से उत्पन्न है। इसे रथी और वीर लोग धारण करते हैं। आदि।

इसी प्रकार अन्य ग्रन्थों में कहा गया है कि—

शङ्खं चन्द्रार्कदैवत्यं मध्ये वरुणदैवतम्।
पृष्ठे प्रजापतिं विद्यादग्रे गङ्गां सरस्वतीम्॥
त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि वासुदेवस्य चाज्ञया।
शंखे तिष्ठन्ति विप्रेन्द्र तस्मात् शंखं प्रपूजयेत्॥

दर्शनेन हि शङ्खस्य किं पुनः स्पर्शनेन तु ।
विलयं यान्ति पापानि हिमवद् भास्करोदये ।।

अर्थात्—शंख चन्द्र और सूर्य के समान देवस्वरूप है। इसके मध्य में वरुण, पृष्ठ भाग में ब्रह्मा और अग्रभाग में गंगा नदी का निवास है। तीनों लोक में जितने भी तीर्थ हैं वे सब भगवान् विष्णु की आज्ञा से शङ्ख में निवास करते हैं। अतः हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! शंख की पूजा करनी चाहिए। शंख के दर्शन मात्र से सभी पाप ऐसे नष्ट हो जाते हैं जैसे कि सूर्योदय होने पर बर्फ पिघल जाता है। फिर स्पर्श की तो बात ही क्या ?

"दक्षिणावर्तशङ्खोयं यस्य सद्मनि तिष्ठति ।
मंगलानि प्रवर्तन्ते तस्य लक्ष्मीः स्वयं स्थिरा ।।
काञ्चनीं मेखलां कृत्वा शुचिस्थाने निधापयेत् ।
शुचिस्तं पूजयेन्नित्यं कुसुमैश्चन्दनैस्तथा ।।
दुग्धेन स्थापनीयोऽयं नैवेद्यै स्तोषयेत् सदा ।
दक्षिणावर्त-शङ्खोऽयं सर्वलक्ष्मीफलप्रदः ।।

यह दक्षिणावर्त शङ्ख जिसके घर में रहता है वहाँ मंगल ही मंगल होते हैं, लक्ष्मी स्वयं स्थिर निवास करती हैं। सोने की मेखला बना कर इसे पवित्र स्थान में रखें और पवित्रतापूर्वक नित्य पुष्प, चन्दन आदि से पूजा करें। इसे दूध भरकर रखना चाहिए तथा नैवेद्य चढ़ा कर उसे प्रसन्न करे। ऐसा करने से सर्वविध लक्ष्मी प्राप्त होती है।" यह कहकर प्रशंसा की गई है। और यहाँ तक कहा गया है कि—

चन्दागुरुकर्पूरैः पूजयेद् यो गृहेऽन्वहम् ।
स सौभाग्ये कृष्णसमो धने स्याद् धनदोपमः ।।

शंख उत्पत्ति

शंख की उत्पत्ति के बारे में 'ब्रह्मवैवर्त-पुराण' के प्रकृति खण्ड के १८ वें अध्याय में एक आख्यान है। वहाँ कहा गया है कि—

'भगवान् शंकर तथा शंखचूड़ राक्षस में परस्पर युद्ध हुआ। इस युद्ध में शिवजी ने भगवान् विष्णु से त्रिशूल प्राप्त करके उसके द्वारा शंखचूड का वध किया और उसके अस्थि-पंजर को समुद्र में डाल दिया। वही आगे शंख के रूप मे उत्पन्न हुआ। इसीलिये शंख में रखा हुआ जल तीर्थजल-गंगाजल के समान पवित्र होता है और यह देवताओं को अति प्रिय है।"

पद्मपुराण के उत्तरखण्ड के १२ वें अध्याय में शंख का वर्णन आता है जिसमें शंख का विस्तृत माहात्म्य दिखाया है। अन्य पुराणों में भगवान् विष्णु के मत्स्यावतार लेने और शंखासुर के मारने संबंधी आख्यान हैं। शंखासुर ने वेदों को चुरा लिया था और उन्हीं को प्राप्त करने के लिये मत्स्यावतार लेकर विष्णु ने उसका वध किया। उसी प्रसंग में शंख के जल से स्नान आदि का माहात्म्य भी विस्तार से वर्णित किया है।

समुद्र-मंथन से निकले हुए १४ रत्नों में शंख भी निकला था। इसलिए यह एक रत्न ही है। कोषकारों ने नौ निधियों में शंख को एक निधि माना है। इसी प्रकार आयुर्वेद, ज्योतिष शकुन शास्त्र तथा सामुद्रिक शास्त्र में भी शंख के बारे में पर्याप्त विचारर आता है।

शंख के प्रमुख भेद

शंख के मुख्यतया दो प्रकार हैं—एक **दक्षिणावर्त** और दूसरा **वामावर्त**। इसमें दक्षिण की ओर जिसका पर्दा खुला होता है, उसे ददिणावर्त तथा बाइं ओर जिसका पर्दा खुला हो उसे वामवर्त कहते हैं। दक्षिणावर्त-शंख सर्वत्र सुलभ नहीं होते हैं और इनका मूल्य भी अधिक होता है, जबकि वामावर्त सर्वत्र प्राप्त होते हैं। दक्षिणावर्त शंख के दो भेद हैं १. पुरुष-शंख तथा २. स्त्री-शंखिनी। इनमें जो मोटी परत वाला तथा भारी होता है उसे पुरुष-शंख कहते हैं तथा पतली परत तथा हलके वजन वाले को स्त्री-शंखिनी कहते हैं।

जिस प्रकार मानवजाति के ब्राह्मण आदि चार वर्णों की मान्यता है उसी प्रकार शंख की भी चार वर्णों के रूप में मान्यता है जिनका परिचय इस प्रकार है—

द्विजातिभेदेन स पुनस्तु चतुर्विधः।
श्वेतो रक्तः पीतकृष्णौ ब्रह्मक्षत्रादिवर्णजाः॥

अर्थात्—

१. जो शंख चिकना, गहरे वर्ण का श्वेत, कोमल तथा हलका होता है वह **ब्राह्मण**-संज्ञक है।

२. जो शंख कर्कश, प्रत्येक अंश में विभक्त रेखाओं वाला तथा अधिक भार वाला लाल रंग का होता है, वह **क्षत्रिय**-संज्ञक है।

३. जो शंख भारी होते हुए भी कोमल हो, प्रत्येक अंश में रेखाओं से विभक्त हो तथा पीले रंग का हो, वह **वैश्य**-संज्ञक है।

४. जो शंख कठोर तथा टेड़े-मेढ़े आकार का हो, जिसका अंग कर्कश हो तथा कालेपन से युक्त और भार में भी बहुत अधिक हो, वह **शूद्र**-संज्ञक है—

इस प्रकार अन्य ग्रन्थों में देवताओं की दृष्टि से भी शंख के कुछ भेद दिखाए गए हैं जिनमें—

(१) **गणेश शंख**—इस शंख के अन्दर और बाहर सिन्दूर के समान रंग होता है तथा पुच्छभाग छोटा होता है। यह शंख बहुत कम मिलता है। भारत में प्रायः ५-७ शंख ऐसे प्राप्त हैं। अतः इनका मूल्य भी ५-६ हजार से कम नहीं हैं।

(२) **देवी शंख**—इस शंख में पीला वर्ण अथवा लाल वर्ण होता है या ऐसे वर्णों की रेखाएँ होती है। पुच्छभाग पर्याप्त लम्बा होता है। साधारण कालिमा है और ताम्रवर्ण से युक्त होने पर भी यह उत्तम माना जाता है। कहा जाता है कि देवी-शंख का पुच्छभाग तीस इंच तक लम्बा होता है।

(३) **विष्णु शंख**—इस शंख का वर्ण श्वेत होता है। मोती की झांई

से युक्त होने पर अथवा दधि के समान पूर्ण उज्ज्वल होनें पर यह उत्तम माना जाता है।

वैसे दक्षिणावर्त शंख के तीन गण अच्छे माने गये हैं—

वृत्तत्वं स्निग्धताच्छत्वं शंखस्येति गुणत्रयम्।

अर्थात् गोल आकार, चिकनापन तथा निर्मलता ये तीन शंख के गुण हैं।

कभी-कभी असावधानी से अथवा प्राचीनतावश ऐसे संख खण्डित भी हो जाते हैं। अतः दोष-निवारण के लिये उस पर सुवर्ण लगानें या मढ़ देने से वह दोष दूर हो जाता है, ऐसी शास्त्राज्ञा है—

आवर्तभङ्गदोषो हि हेमयोगाद् विनश्यति।

जाति—यह भी कहा जाता है कि—जो शंख, घृत, दधि, पिष्ट अथवा बगुले के समान श्वेतवर्ण का हो वह **पुरुष जाति** का होता है तथा जो मेघ के समान श्याम अथवा राख के समान वर्ण का हो वह **स्त्री जाति** (शंखनी) का होता है।

शंख की परीक्षा—शंख वास्तविक है अथवा कल्पित, इस बात को पहचानने के लिए किसी एक पात्र में पूरा शंख डूब जाए इतना पानी भरकर उसमें किसी प्रकार का क्षार मिला दें। फिर उसमें पाँच दिन तक शंख को डुबोकर रख दें। यदि वह कल्पित होगा, तो काला पड़ जाएगा।

भार के आधार पर उत्तम मध्यमता—वैसे तो तीन तोले के वजन से अधिक होने पर शंख उत्तम माना जाता है; किन्तु अन्यत्र कहा गया है कि २५ से ५१ तोले तक का शंख उत्तम है, २५ तोले से कम ११ तोले तक के वजन का होने पर मध्यम तथा उससे कम होने पर सामान्य होता है। जिस शंख पर छाल हो वह भी ग्राह्य है। नकली शंख ७ दिन तक पानी में (कलमी सोड़े के साथ) रहने से फट जाता है।

ये शंख कान के पास रखने से ॐकार ध्वनि करते हैं। अतः यदि

उन पर फूल, दाग अथवा अन्य किसी प्रकार के दोष होने पर भी वे यदि ॐकार की ध्वनि करते हों, तो उन्हें पूजा में ग्रहण करना चाहिए।

हिन्दुस्तान में दक्षिण समुद्र के किनारे पर तथा मध्यप्रदेश में इन्दौर से आगे तक नदी के किनारे पर ये शंख मिलते हैं। कन्या कुमारी में विष्णु शंख, धनुष्कोटि में गणेश शंख तथा सिलोन के किनारे पर देवी शंख मिल जाते हैं, ऐसी जनश्रुति है।

'दक्षिणावर्त शंख-कल्प' के नाम से तीन-चार कल्प यत्र-तत्र प्राप्त होते हैं। इनमें 'भुवनेश्वरी पीठ' गोंडल सौराष्ट्र से संवत् १८०५ में लिखित प्रति के आधार पर सर्वप्रथम जो कल्प मुद्रित हुए उन्हीं का सर्वत्र प्रचार है। अतः पहले उन्हें ही यहाँ अनुवाद-सहित शुद्ध करके दे रहे हैं—

१. अथदक्षिणावर्त-शङ्ख-कल्पः (प्रथमः)

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लूँ सुदक्षिणावर्तशङ्खाय नमः।

इति पूजामन्त्र। १०८ वारं नित्यं पूज्यते चन्दनागरुकर्पूरैः। प्रथमयामपूजायां राज्यमानम्। द्वितीययामे श्रीवृद्धिः। तृतीययामे यशःकीर्तिवृद्धिः। चतुर्थयामे सन्तानवृद्धिः। स च शङ्खश्चन्दनर्चाचितः सन् एकवर्णगोदुग्धेन प्रक्षाल्य तद् दुग्धं यदि वन्ध्यायै दीयते तदा सुतोत्पत्तिः मृतवत्सायै वत्सजीवनम्। कुक्षिपूजा परावर्तः स आयुष्मान् सुरेन्द्रप्रियो भवति। विसदृशच्छाये शङ्खे पूजकस्य नाशः स्यात्।

ॐ श्रीं श्रीधरकरस्थाय पयोनिधिजाताय लक्ष्मीसहोदराय चिन्तितार्थप्रदाय श्रीदक्षिणावर्तशङ्खाय ह्रीं श्रीं श्रीकराय पूज्याय नमः।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लूँ दक्षिणमुखाय शङ्खनिधये समुद्रप्रभवाय नमः।

एकमासं यावत् प्रत्यहं १० मालाजप : कार्यः।

प्रथम कल्प का अर्थ

'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लूँ सुदक्षिणावर्तशङ्खाय नमः'

यह पूजा मन्त्र है। चन्दन, अगर तथा कपूर से प्रतिदिन पूजा कर के १०८ बार उपर्युक्त मन्त्र का जप करना चाहिये। इस मन्त्र जप से की जाने वाली पूजा के लिए विभिन्न फल इस प्रकार हैं —

(१) दिन के पहले पहर में पूजा जप करने से **राज-सम्मान** प्राप्त होता है।

(२) दिन के दूसरे पहर में पूजा तथा जप करने से **श्रीवृद्धि** होती है।

(३) दिन के तीसरे पहर में पूजा तथा जप करने से **यश और कीर्ति** बढ़ती है।

(४) दिन के चौथे पहर में पूजा तथा जप करने से **सन्तान-वृद्धि** होती है।

(५) इस शंख की चन्दन से पूजा करके एक रंग की (कपिला) गौ के दूध से स्नान कराये और वह दूध यदि बाँझ स्त्री को दिया जाए, तो पुत्रोत्पत्ति हो।

मृतवत्सा को देने से पुत्र जीवित रहता है। शंख की कुक्षि और आवर्त को पूजा करने से पूजक सुरेन्द्र का प्रिय होता है। एक समान छाया वाले शंख की पूजा उत्तम है। असमान छाया वाला शंख पूजक का नाश करता है।

'ॐ श्रीँ श्रीधरकराय' इत्यादि मन्त्र अथवा 'ह्रीँ श्रीँ क्लीँ ब्लूँ दक्षिणमुखाय' इत्यादि मन्त्र का एक मास तक प्रतिदिन जप करना चाहिये।

२. अथ द्वितीयः कल्पः

समुद्रस्योत्तरे कोणे, शंखधारावती पुरी।
तस्यां शंखाः समुत्पन्ना, वामावर्ताः सहस्रशः ॥ १ ॥
तेषां मध्येऽपि राजाख्यो, दक्षिणावर्ततां गतः।
शंखारूढोऽपि सर्वत्र, जले खेलति निर्भयः ॥ २ ॥

कृष्णायुधमिव श्रेयान् सम्मान्यः सर्वशंखकैः ।
तं कश्चित् पुण्ययोगेन, प्राप्नोति पुरुषोत्तम ॥ ३ ॥
तस्य राजा वंश याति, धन-धान्यैर्न मुच्यते ।
दृष्टाश्व-गज-सर्पेभ्यो, न भयं तस्य सम्भवेत् ॥ ४ ॥
शाकिनी-भूत-वेतालाः, पिशाचा ब्रह्मराक्षसा ।
प्रभवन्ति न वै तस्य, यत्र शंखो महाद्युतिः ॥ ५ ॥
अकाले मरणं नास्ति, दुर्जनैर्नोपहन्यते ।
अग्नि-चौरभयं नैव, शुभं सर्वत्र जायते ॥ ६ ॥
सुरभिदुग्धवर्णाभो, धूसरच्छायतां गतः ।
नग्राह्यः स हि दोषाणां, प्रभवः परिकल्पितः ॥ ७ ॥
रक्त-पीत-हरिच्छ्वेत-द्युतिराभ्यन्तरे भवेत् ॥
स श्री-सन्तान-दिक्कीर्ति, प्रददाति न संशयः ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीँ श्रीँ क्लीँ ब्लूँ श्रीदक्षिणावर्तशंखाय भगवते विश्वरूपाय सर्वयोगीश्वराय त्रैलोक्यनाथाय सर्वकामप्रदाय सर्व-ऋद्धि-समृद्धि वाञ्छितार्थसिद्धिदाय नमः। (अग्रतो लक्ष्मीबीजानि सञ्चिन्त्य ध्यानादि पुरस्सरं पूर्वोक्तमन्त्रेण कर्पूरादिसुगन्धिद्रव्यैः श्वेतपुष्पैः प्रत्यहं पूजा कार्या।)

ॐ ह्रीँ श्रीँ क्लीँ ऐँ महालक्ष्मी मम वाञ्छितार्थसिद्धि कुरु कुरु स्वाहा। (इति मन्त्रं च जपेत्।)

पूर्वं स्वर्णभागं १२ तारं १६ प्रवेष्ट्य तदनु सुवर्णपत्रस्योपरि निम्न-यन्त्रं समालिख्य तस्योपरि शंखो मोचनीयः रौप्यमञ्जूषायां संस्थाप्यते। तेन रक्षणीयः। एतस्य पूजकगृहे लक्ष्मीः पुष्कला स्यात्।

द्वितीय कल्प का अर्थ

समुद्र के उत्तरकोण में शंख धारावती नामक पुरी है। उसमें वामावर्त—बाईं पांख वाले अनेक शंख उत्पन्न हुए हैं॥ १॥ उनमें

शंखराज के रूप में **दक्षिणावर्त**—दाहिनी पांखवाला शंख जल में स्थित सभी शंखों पर आरूढ़ होकर निर्भयतापूर्वक विहार करता है ॥ २ ॥ वह दक्षिणावर्त शंख अन्य सभी शंखों की अपेक्षा सम्मान्य तथा भगवान् विष्णु का आयुध होने के कारण अत्यन्त मंगलमय है। उसे पुरुषों में कोई श्रेष्ठ पुरुष ही पूर्वपुण्यों के योग से प्राप्त करता है ॥ ३ ॥ यह शंख जिसके पास रहता है, राजा उसके वश में रहते हैं, वह धन-धान्य से रहित नहीं होता। दुष्ट, घोड़े, हाथी अथवा सर्प का भय उसे नहीं सताता ॥ ४ ॥ शाकिनी, भूत, वेताल, पिशाच, ब्रह्मराक्षस आदि जहाँ यह कान्तिशाली शंख रहता है वहाँ नहीं रहते हैं ॥ ५ ॥ इस शंख की पूजा करने वाले की आकस्मिक मृत्यु नहीं होती। दुर्जन उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते। अग्नि अथवा चोर के भय से वह पीड़ित नहीं होता तथा सर्वत्र उसका शुभ होता है ॥ ६ ॥ गाय के दूध के समान कान्तिवाला शंख उत्तम कहा जाता है। धुएँ के समान रंग वाला उत्तम नहीं होता। अतः ऐसा शंख पूजा में नहीं रखना चाहिए। वह दोषों का उत्पादक है ॥ ७ ॥ लाल, पीली, हरी अथवा श्वेत कान्ति जिसमें चमकती हो वह शंख लक्ष्मी, सन्तान और दिशाओं में कीर्ति प्रदान करता है। इसमें सन्देह नहीं ॥ ८ ॥

'ॐ ह्रीँ श्रीँ' इत्यादि मन्त्र से पूर्व श्रीँ बीज बोलकर शंख की कपूर आदि सुगन्धित द्रव्य तथा श्वेत पुष्पों से पूजा करे तथा 'ॐ ह्रीँ श्रीँ क्लीँ ऐँ महालक्ष्मी' इत्यादि मन्त्र का जप करे।'

१२ भाग सुवर्ण तथा १६ भाग चाँदी से बनाये गये पतरे पर बताये गये यन्त्र बनवाकर इस शंख को ऊपर रखे। पूजा के पश्चात् एक चाँदी की पेटी में इसे स्थापित करे जिस पर अगले पृष्ठ पर बताई हुई आकृति के समान यन्त्र लिखा हो। ऐसा करने से पूर्ण लक्ष्मी प्राप्त होती है।

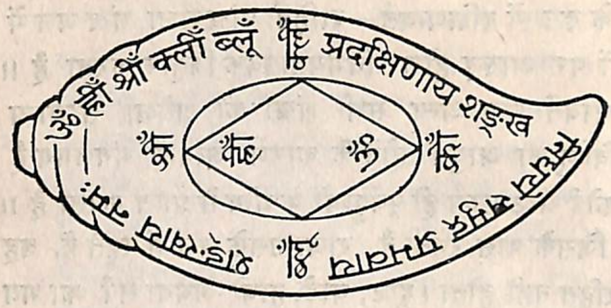

रौप्यमयी पेटिका

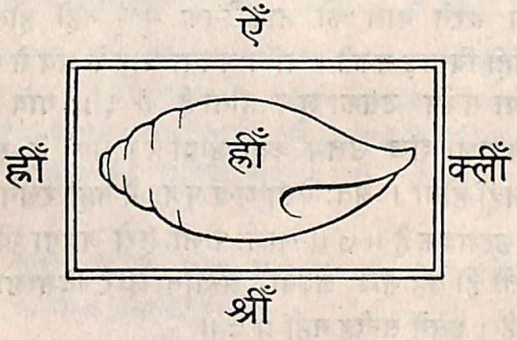

३. अथ तृतीयः कल्पः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि, लोकानां हितकाम्यया ।
दक्षिणावर्तमाहात्म्यं, ह्वंकामितदायकम् ॥ १ ॥

श्वेतवर्णो महान् भव्यः, पीतवर्णस्तु मध्यमः ।
श्यामाभः कीटकाकीर्णो नैव वाञ्छितदायकः ॥ २ ॥

यथा यथा वृद्धिमान् स्यात्, तथाधिकफलप्रदः ।
गृहीत्वा गुप्यसंस्थाने, स्थाप्यो देवालये वरे ॥ ३ ॥

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां, प्रतिष्ठाप्य सुविस्तरैः ।
सूरिमन्त्रैः स्वमन्त्रेण, शुभलग्ने फलप्रदः ॥ ४ ॥
षड्दश द्रव्यमादाय, वासः सिद्धार्थपुष्पकैः ।
कर्पूरचन्दनाद्यैश्च चर्चयेद् गाङ्गवारिणा ॥ ५ ॥
ॐ ह्रीँ श्रीँ क्लीँ ब्लूँ प्रदक्षिणाय नमः (अयं प्रदक्षिणामन्त्रः)

ॐ नमो भगवन् प्रदक्षिणावर्तं ! क्षीरोदधितनय ! लक्ष्मीभ्रातः ! अत्र सपरिवारेण अमुकस्य गृहे तिष्ठ तिष्ठ, पूजां बलिं गृह्ण गृह्ण, मनोरथान् पूरय पूरय, श्रीं नमः । (अनेन मन्त्रेण पूजा कार्या) ।

तृतीय कल्प का अर्थ

अब मैं संसार के कल्याण की भावना से सर्वकामनाओं को पूर्ण करने वाले दक्षिणावर्त शंख का महात्म्य कहता हूँ ॥ १ ॥ सफेद वर्ण वाला दक्षिणावर्त शंख अतिभव्य होता है, पीले रंग का मध्यम होता है, काले धुएँ के समान रंग वाला और कीड़ों के द्वारा खाया हुआ उत्तम नहीं होता है ॥ २ ॥ यह शंख जितना-जितना बड़ा होता है, वह अधिक फलप्रद होता है । इस शंख को किसी गुप्त स्थान में अथवा उत्तम देवालय में रखना चाहिए ॥ ३ ॥ अष्टमी अथवा चतुर्दशी को विधिपूर्वक सूरिमन्त्र[1] अथवा अपने इष्टमन्त्र द्वारा शुभ लग्न में इसकी प्रतिष्ठा करने से यह उत्तम फल देता है ॥ ४ ॥ इस शंख को गंगाजल से स्नान कराये, कपूर और चन्दन से पूजन करे और सुगन्धित उत्तम पुष्पों में विराजमान करे । इस प्रकार षोडशोपचार पूजन से यह इच्छित फल देता है ॥ ५ ॥

---

१. सूरि मन्त्र जैनाचार्यों में प्रसिद्ध है । यहाँ गुरु द्वारा प्राप्त मन्त्र का भी संकेत है ।

अथ दक्षिणावर्तशंखस्तुतिः

नमामि सकलार्थसिद्धिदं, सुश्वेतवर्णं कमलासहोदरम् ।
क्षीरोदपुत्रं मनसोऽर्थदायकं, राज्यार्थसन्तानफलप्रदं भजे ॥ १ ॥
कल्याणकारी दुरितापहारी, मनोऽर्थधारी घनविघ्नतारी ।
श्रीदक्षिणावर्त-सुरम्यनाथ ! मनोरथं पूरय मे समग्रम् ॥ २ ॥

अर्थ—उत्तम श्वेत वर्ण वाले लक्ष्मी के भाई तथा समस्त इच्छित वस्तु को देने वाले देवस्वरूप 'दक्षिणावर्त शंख को मैं प्रणाम करता हूँ। समुद्र के पुत्र, मन की इच्छाओं को पूर्ण करने वाले तथा राज्य, धन, सन्तान आदि के फल को देने वाले शंख का मैं स्मरण करता हूँ ॥ १ ॥

हे दक्षिणावर्त शंखदेव ! आप कल्याणकर्ता, पापहारी, इच्छित दाता तथा दुष्टविघ्नों से बचाने वाले हैं। अतः हे देव। मेरे सभी मनोरथों को पूर्ण करो ॥ २ ॥

अथ ध्यानम्

ॐ सर्वाभरणभूषिताय प्रशस्यांगोपांगसंयुताय कल्पवृक्षाधः स्थिताय कामधेनु-चिन्तामणि-नवनिधिरूपाय चतुर्दशरत्नपरिवृत्ताय महासिद्धिसहिताय लक्ष्मीदेवतायुधाय कृष्णदेवताकर-लालिताय श्री शंखमहानिधये नमः ।

अर्थ—सर्वविध आभरणों से भूषित, उत्तमोत्तम अङ्ग और उपांगों से युक्त, कल्पवृक्ष के नीचे स्थित, कामधेनु, चिन्तामणि और नवनिधि स्वरूप, चौदह रत्नों से परिवृत्त, आठ महासिद्धियों से संयुक्त, लक्ष्मी देवता के साथ कृष्ण भगवान् के हाथ में शोभायमान श्री शंख महानिधि के लिए मैं प्रणाम करता हूँ।

अथ प्रतिष्ठामन्त्रः

ॐ सर्वतोभद्राय सर्वाभीष्टफलप्रदाय सर्वारिष्ट-दुष्ट-कष्ट-निवार-

काय कामितार्थप्रदाय शङ्खाय स्वाधिष्ठायकाय भास्करीं क्लीँ श्रीँ ब्लूँ क्रौं नमः स्वाहा।

इस मन्त्र से प्रतिष्ठा करके नीचे लिखे मन्त्र का जाप करे—"ॐ ह्रीँ श्रीँ ब्लूँ श्रीधरकरस्थाय पयोनिधिजाताय श्रीकराय जनपूज्याय दक्षिणावर्तशंखाय सुरपूज्याय देवाधिष्ठताय क्लीँ श्रीँ श्रीँ नमः॥

अथ शंख-प्रार्थना

ॐअग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः।
तमीमहे गयम्।
त्वं पुरा सागरोत्पन्नो विष्णुना विधृतः करे।
निर्मितः सर्वदेवैश्चपांचजन्य! नमोऽस्तुते॥

४. अथ चतुर्थः कल्पः

मुनिराज श्री अभयसागर जी, गणिमहाराज ने कृपा करके लेखक को शंख का एक प्रयोग इस प्रकार भी बताया है—

॥ श्री दक्षिणावर्तशंख पूजनविधि ॥

आश्विन शुक्ल २ को प्रातः ६ बजे गाय के धारोष्ण दूध १½ सेर में (शंख की ऊपर की चोटी ही सिर्फ बाहर रहे) पूर्व अथवा उत्तर दिशा में उसकी चोटी रहे इस तरह चाँदी अथवा काँसे के पात्र में दक्षिणावर्त शंख को रखे।

घी का दीपक लगाकर ३७ मिनट में ॐ ह्रीँ तत्सत् परब्रह्मणे नमः मन्त्र की ५ माला फेरे। बाद में स्नानादि करके बकरी का मूत्र १/४ सेर, मींगनी १० तोला, गोमूत्र २५ तोला, कंडे की राख १/२ सेर मिलाकर सुखाकर गोले या कंडे बना ले। फिर ठीक दोपहर में १२½ बजे घी का दीपक लगाकर 'ॐ ह्रीँ क्लीँ श्रीँ नमः क्लीँ' मन्त्र की १३ माला फिराये। यह मूलमन्त्र है।

शाम को सूर्य आधा अस्त हो उस समय चाँदी के पात्र में दूसरा दूध तैयार कर रखे और शंख को निकालकर शुद्ध कूपोदक से स्वच्छ कर, कपड़े से पोंछकर चन्दन से पूजा कर पुनः मूलमन्त्र ७ बार पढ़कर शंख को नये दूध में रख दे। सुबह के दूध में जावन (मेलवण) मिलाकर दही मिला ले।

रात्रि को ठीक ११½ से १½ तक '‌ॐ **ह्रीं तत्सत् परब्रह्मणे नमः ह्रीं**' मन्त्र की ११ माला और मूलमन्त्र की २१ माला फिराकर दर्भासन पर बांई करवट शंख को सिरहाने की ओर रखकर पास में सो जाय। पुनः ३ को प्रातः नये दूध में इसी प्रकार स्थापना करे। रात्रि के दूध को जमाकर दही बना ले। शेष विधि द्वितीय के समान ही करे। इस तरह सुदी ५ तक करे। सुदी ५ की शाम को दूध से निकालकर चने का आटा ¼ सेर उसमें ½ सेर चीनी मिलाकर उसमें चावल का आटा ¼ सेर मिलाए। तथा शंख को उसमें रखे।

सुदी ७-८ और ६ की रात्रि को १२ बजे तक घी का दीपक आटे में रखने के बाद अखण्ड रखे।

नवमी की रात्रि को १२ बजे चीनी के पानी से शंख को स्नान कराकर शुद्ध जल से धो ले। फिर पीले कपड़े में लपेटकर ४ श्रीफल के बीच में ५ रुपये नकद के ऊपर शंख को पधराए। पूरे दिन और रात विजयादशमी को उपवास रखे और सामने बैठकर मूलमन्त्र का १२,५०० जप करे।

फिर प्रतिदिन '**ॐ तत् सत् परब्रह्मणे नमः**' मन्त्र की तीन माला और मूलमन्त्र की ७ माला फिराये। अश्विन शुक्ल २, ३, ४, ५ के दूध का जो दही बनाया हो उसका बिलोना करके मक्खन निकालकर छाछ गौमाता को पिलाये तथा घी का दीपक प्रतिदिन माला फिराये तब तक करे। उस घी को खत्म न होने दे। थोड़ा-थोड़ा दूसरा घी मूलमन्त्र के २१ जप के साथ मिलाता रहे।

अगले आश्विन की नवरात्रि तक वह घो चलना चाहिए। इस तरह ४ नवरात्रि के बाद यह शंख इष्टसिद्धि करने वाला होता है।

[विशेष गुरु के चरणों में बैठकर समझने की चेष्टा करें।]

५. अन्य प्रयोग

ऐसी ही अन्य विधियां रुद्राभिषेक लक्ष्मीसूक्त आदि के पाठ द्वारा भी सम्पन्न होती हैं।

फलश्रुति—इस प्रकार जप, ध्यान, पूजन आदि करने से सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं और अनेकविध पुण्य-फल प्राप्त होते हैं जिनका वर्णन निम्नलिखित पद्यों में किया गया है—

दक्षिणावर्तशङ्खेन गत्वा प्राक् स्रोतसीं नदीम्।
कृत्वाभिषेकं विधिवत् ततः पापैः प्रमुच्यते ॥ १ ॥

दक्षिणावर्तशंखेन तिलमिश्रोदकेन तु।
उदके नभिमात्रे तु यः कुर्यादभिषेचनम् ॥ २ ॥

प्राक्स्रोतस्यां नरो नद्यां नारी तत्राम्भसा प्लुता।
यावज्जन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥ ३ ॥

दक्षिणावर्तशंखेन नद्यास्तीर्थस्थलस्य वा।
उदकं यः प्रतीच्छेत शिरसा हृष्टमानसः ॥ ४ ॥

तरन्ति पितरस्तस्य नश्यन्ति पातकानि च।
न शङ्खेन पिबेत्तोयं न हन्यान्मत्स्यशूकरौ ॥ ५ ॥

दक्षिणावर्तशंखस्य तोयेन चार्चयेद्धरिम्।
समजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥ ६ ॥

दक्षिणावर्तशङ्खस्तु कुर्यादायुर्यशो धनम्।
दुःखानि चास्य नश्यन्ति सौख्यं सर्वत्र विन्दति ॥ ७ ॥

तेनैव शिरसा यस्तु श्रद्धधानः प्रतीच्छति।
वारि हित्वा स पापानि पुण्यमाप्नोति मानवः ॥ ८ ॥

वृत्तत्वं स्निग्धताच्छत्वं शंखस्येति गुणत्रयम् ।
आवर्तभंगदोषो हि हेमयोगाद्विनश्यति ।। ९ ।।
द्विजादिजातिभेदेन स पुनस्तु चतुर्विधः ।
श्वेतो रक्तः पीतकृष्णौ ब्रह्मक्षत्रादिवर्णजाः ।। १० ।।
शङ्खशब्दो भवेद्यत्र तत्र लक्ष्मीश्च सुस्थिरा ।
स स्नातः सर्वतीर्थेषु यः स्नातः शंखवारिणा ।। ११ ।।
शङ्खे हरेरधिष्ठानं यत्र शङ्खस्ततो हरिः ।
तत्रैव सततं लक्ष्मीर्दूरीभूतममंगलम् ।। १२ ।।
स्त्रीशूद्रश्च कृतैः शंखध्वनिभिश्च विशेषतः ।
भीता रुष्टा याति लक्ष्मीः स्थलमन्यत्स्थलात्ततः ।। १३ ।।

और अन्य कल्प में—

पुष्पसंस्तारके स्थाप्य क्षीर-गंगादिवारिणा ।
प्रक्षाल्य पूजयेन्नित्यं कर्पूर-चन्दनादिभिः ।। १ ।।
पूर्वाह्णे राज्यसम्मानं द्वितीये जनवल्लभः ।
तृतीये धनवृद्धिश्च चतुर्थे पुत्रसन्ततिः ।। २ ।।
ददाति पूजितो नित्यं चतुर्भिः प्रहरै पृथक् ।
चिन्तामणिसमो ज्ञेयो दक्षिणावर्तशंखकः ।। ३ ।।
यां यां हि कामनां कृत्वा पूज्यते जलजो यथा ।
जापे ध्याने स्थितस्याथ ददाति सततं हितम् ।। ४ ।।
वन्ध्यां पुत्रप्रदो ज्ञेयो निर्धनस्य धनप्रदः ।
अराज्यस्य ददद् राज्यं कामुकस्य हि कामितम् ।। ५ ।।
इत्यादि ।

(इन पद्यों के अर्थ विस्तार-भय से नहीं दिये गये हैं, विद्वानों के सम्पर्क से ज्ञात करें ।)

इति दक्षिणावर्त-शंख-कल्प-प्रयोगाः ।

९ | तिलक-तन्त्र

तन्त्रशास्त्रों में ललाट पर तिलक धारण करने और उसके द्वारा सम्मोहन, वशीकरण एवं शान्ति के कुछ तान्त्रिक प्रयोग प्राप्त होते हैं। यह नितान्त सत्य है कि कोई भी व्यक्ति अन्य व्यक्ति की वेशभूषा, आकार-प्रकार तथा बोल-चाल से उसके अन्तर्मन् की भावनाओं को कुछ अंशों में समझ लेता है। यही कारण है कि लोग अपने स्वरूप का प्रभाव डालने के लिए ऐसा प्रयत्न करते हैं। इस प्रत्यक्ष-प्रभावी प्रक्रिया के द्वारा हम देखते हैं कि लोग प्रभाव में आ जाते हैं। इसी के आधार पर यह भी विश्वास होना चाहिए कि तिलक धारण से भी अवश्य ही प्रभाव पड़ता है। **'तन्त्र क्रिया एक प्रकार के वातावरण की सृष्टि करती है और उससे मानव-मस्तिष्क में वैसी ही भावना बन जाती है'** यह स्पष्ट है। तिलक इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। सम्मोहन के लिए तिलक के निम्नलिखित प्रयोग दर्शनीय हैं—

(१) **श्वेतगुञ्जारसैः पेष्यं ब्रह्मदण्ड्याश्च मूलकम्।**
लेपमात्रं शरीरे तु, मोहयेत् सर्वतो जगत्॥

सफेद गुंजा के पत्तों के रस में ब्रह्मदण्डी के मूल को पीस ले, तथा उसका शरीर पर लेप करे अथवा उसका तिलक करे, तो उससे सारा जगत् मोहित हो जाता है।

(२) **श्वेतार्कमूलं सिन्दूरं पेषयेत् कदलीरसे।**
अनेनैव तु तन्त्रेण तिलकं लोकमोहनम्॥

सफेद आक के मूल और सिन्दूर को मिलाकर केले के रस में पीस ले ओर उसका ललाट पर तिलक करे। इससे लोकमोहन होता है।

(३) सिन्दूरं कुंकुमं चैव गोरोचन-समन्वितम्।
धात्रीरसेन सम्पेष्य तिलकं लोकमोहनम्॥

सिन्दूर तथा कुंकुम को गोरोचन के साथ मिलाकर आँवले के रस में पीस ले और इस प्रकार तैयार किए गए गन्ध से तिलक करने पर लोगों का मोहन होता है।

(४) सहदेव्या रसेनैव तुलसी-बीज-चूर्णकम्।
रवौ यस्तिलकं कुर्यान् मोहयेत् सकल जगत्॥

सहदेवी के रस में तुलसी के बीजों को पीसकर रविवार को तिलक करने से सारा जगत् मोह को प्राप्त होता है।

(५) मनःशिलां च कर्पूरं पेषयेत् कदलीरसे।
तिलकं मोहनं नृणां, नान्यथा भाषितं मया॥

भगवान् शिव पार्वती से कहते हैं कि—मैनसिल और कपूर को केले के रस में पीसकर उसका तिलक करने से मनुष्यों को मोहन होता है। यह मेरा कथन असत्य नहीं है।

(६) हरितालं चाश्वगन्धां पेषयेत् कदलीरसे।
गोरोचन-समायुक्तं तिलकं लोकमोहनम्॥

हरिताल और असगन्ध को केले के रस में पीसे और उसमें गोरोचन मिलाकर तिलक करे। इससे लोक मोहित होते हैं।

(७) भृंगी-चन्दन-संयुक्तं वचाकुष्ठसमन्वितम्।
धूपं देहु तथा वस्त्रे मुखे दद्याद् विशेषतः॥
पशुपक्षिप्रजानां च राज्ञां मोहनकारकम्।
ताम्बूलमूलतिलकं लोकमोहन-कारकम्॥

काकड़ा सिंगी, चन्दन, वचा और कुट इनको मिलाकर धूप जलायें

तथा उसे शरीर, वस्त्र और मुख पर देवें। इसके साथ ही इन वस्तुओं को पान के रस में पीसकर तिलक लगाने से पशु, पक्षी, प्रजा राजा, आदि सभी मोहित होते हैं।

(८) सिन्दूरं च श्वेतवचां ताम्बूलरसपेषिताम्।
अनेनैव तु मन्त्रेण तिलकं लोकमोहनम्॥

सिन्दूर तथा सफेद वचा को पान के रस में पीसकर (नीचे लिखे मन्त्र से) तिलक करने से सभी का मोहन होता है।

(९) अपामार्गो भृंगराजो लाजा च सहदेविका।
एभिस्तु तिलकं कृत्वा त्रैलोक्यं मोहयेन्नरः॥

जो मनुष्य अपामार्ग, भांगरा, लाजवन्ती और सहदेवी को पीस कर बनाए गए गन्ध से तिलक करता है, वह तीनों लोकों को मोहित करता है।

(१०) श्वेतदूर्वा गृहीत्वा तु हरितालं च पेषयेत्।
कृते तु तिलकं भाले दर्शनात् मोहकारकम्॥

सफेद दूर्वा और हरिताल को पीसकर उससे मस्तक पर तिलक किया जाए, तो उसके देखने मात्र से लोक मोहित होते हैं।

(११) बिल्वपत्रं गृहीत्वा तु छायाशुष्कन्तु कारयेत्।
कपिला-पयसा युक्तं, वटीं कृत्वा तु गोलकम्॥
एभिस्तु तिलकं कृत्वा मोहयेत् सर्वतो जगत्।

बेलपत्र लेकर उन्हें छाया में सुखाये और फिर उन्हें कपिला गाय के दूध में पीसकर गोली बना ले। फिर आवश्यकता पड़ने पर इनका तिलक करने से सारा जगत् मोहित होता है।

(१२) पेषयेत्तुलसीबीजं सहदेव्वा रसेन च।
रवौ यस्तिलकं कुर्याद् मोहयेत् सकलं जगत्॥

सहदेवी के रस में तुलसी के बीजों को पीसकर रविवार के दिन तिलक करने से सारे जगत् को मोहित कर सकता है।

(१३) भृङ्गराजमपामार्गं सिद्धार्थं सहदेविकां।
कोलं वचा च श्वेतार्कः सत्त्वमेषां समाहरेत्॥
लोहपात्रे विनिक्षिप्य त्रिदिनं मर्दयेत् सुधीः।
ललाटे तिलकं कुर्याद् द्रष्टुर्बुद्धिः प्रणश्यति॥

इसी प्रकार—बिल्वपत्र और बिजोरे नीबू को बकरी के दूध में पीसकर तिलक करने से, अथवा गंवार पाठे की जड़ में भंग के बीज पीसकर तिलक करने से वशीकरण होता है।

तिलक-तन्त्र के पर्व

जो व्यक्ति तिलक से सम्बन्धित ऊपर बताये गये प्रयोगों में से किसी प्रयोग को करना चाहे वह सबसे पहले नीचे लिखे मन्त्रों में से किसी एक का जपात्मक पुरश्चरण करे।

(१) 'ॐ ह्रीँ कालि कपालिनी घोरनादि विश्वं विमोहय जगन्मोहय सर्वं मोहय ठः ठः ठः स्वाहा।'

अथवा

(२) उड्डामरेश्वराय सर्वजगन्मोहनाय अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं हुं फट् स्वाहा।

अथवा

(३) ॐ नमो भगवते उड्डामरेश्वराय मोहयं मोहय मिलि मिलि ठः ठः।

अथवा

(४) ॐ ह्रीँ सिद्ध्यै नमः।

फिर यथाविधि हवनादि करके तिलक को ७ बार मन्त्र बोलकर अभिमन्त्रित करके मस्तक पर लगाये।

———

१० पुष्प, पत्र एवं फल तन्त्र

पुष्प के प्रयोग प्रायः १. पूजन २. हवन और ३. अभिमन्त्रित करके धारण[1] के रूप में तीन प्रकार से किये जाते हैं। इनमें पूजन-प्रयोग में कर्म के अनुसार पुष्प को ग्रहण करें। सात्त्विक कर्मों में श्वेत, पीत और लाल रंग के सुगन्धित पुष्प तथा उग्र कर्मों में काले, भूरे और चितकबरे निर्गन्ध पुष्पों की इष्टमन्त्र बोलते हुए देवता पर १०८, १००८ अथवा इससे अधिक अनुष्ठान के दिनों में चढ़ाए। इससे शीघ्र सिद्धि होती है।

लक्ष्मी-प्राप्ति के लिए

श्रावण कृष्णा प्रतिपदा से १ मास तक ब्रह्मचर्य, भू-शय्या, सात्त्विक भोजन आदि नियमों का पालन करते हुए प्रतिष्ठित शिवलिंग पर प्रति-दिन ११, २१, ४१, ५१ अथवा १०८ आक के पुष्पों से पूजन करे। पुष्प चढ़ाने के समय '**ॐ नमः शिवाय**' मन्त्र बोले। तदनन्तर १०८ बिल्वपत्र लाकर उन पर रक्त चन्दन द्वारा मालती अथवा अनार की कलम से निम्नलिखित यन्त्र लिखकर उपर्युक्त मन्त्र बोलते हुए प्रति-दिन चढ़ाये। ऐसा करने से अवश्य ही लक्ष्मी प्राप्ति होती है। यह अनु-भूत प्रयोग है। पूर्णाहुति के दिन यथाशक्ति बिल्वपत्र का हवन तथा प्रसाद वितरण करे।

---

१. पुष्प अथवा माला के रूप में स्वयं धारण तथा देवताओं को धारण कराना।

लक्ष्मी प्राप्ति के लिये बिल्वपत्र पर लिखने का यन्त्र

वं	वं	वं	वं
पं	पं	पं	पं
दं	दं	दं	दं
लं	लं	लं	लं

पत्र-तन्त्र

पीपल के ११ पत्तों पर चन्दन से नीचे लिखा मन्त्र लिखकर घर के दरवाजे पर लाल वस्त्र से बाँधने पर ज्वर, महामारी और निमोनिया आदि रोगों की निवृत्ति होती है—

ॐ घण्टाकर्ण महावीर सर्वोपद्रवक्षयं कुरु-कुरु स्वाहा।

अथवा

ऊँ ह्रीँ बटुकाय आपदुद्धारणाय कुरु-कुरु बटुकाय ह्रीँ ॐ।

इसी प्रकार आक के पत्तों पर हनुमान अथवा शनि का मन्त्र लिख कर लगाने से भी सभी दोष मिट जाते हैं।

फल तन्त्र

श्रीफल, सुपारी, लोंग, इलायची एवं अन्य कच्चे फलों को भी ऊपर लिखी हुई पद्धति से उसके सिद्ध मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित करके रोगी अथवा अन्य कार्यसिद्धि के इच्छुक व्यक्ति को साधक वर्ग देता है, और ऐसा बहुधा देखा गया है कि उससे पूर्ण सफलता प्राप्त होती है। अतः ये प्रयोग भी किये जा सकते हैं।

१. वशीकरण-धूप

माहेश्वरी-तन्त्र में मोहन के लिये धूप देते हुए मन्त्र जपने का विधान इस प्रकार दिया है—

श्रृंगीचन्दनकुष्ठेन वचाधूपेन धूपयेत् ।
वस्त्राणि च मुखं चैव सर्वजन्तून विमोहयेत् ।।

अर्थात्—काकड़ासिगी, चन्दन, कूट और वच इन सबको (समान मात्रा में) मिलाकर धूप बनाये तथा (नीचे लिखा हुआ मन्त्र जपकर के) मुख तथा वस्त्रों को उस धूप के धुएँ से धूप दे, तो सब प्राणियों को मोहित कर लेता है। मन्त्र—ॐ **रक्तचामुण्डे सर्वजनान् मोहय-मोहय मम वश्यं कुरु कुरु स्वाहा :**

२. सर्पादिभयनाशक धूप

गुड-श्रीवास-भल्लात-विहंग-त्रिफला युतः ।
लाक्षार्क-पुष्पयुक्तश्च धूपो वश्चिक-सर्पहृत् ।।

गुड़, सफेद चन्दन, भिलामा, वायविडंग, हरड़े, बहेड़ा और आंवला, लाख का रस तथा आक के पुष्प इन सबको मिलाकर घर में धूप देने से बिच्छू और सर्प का भय नहीं होता है।

३. क्षुद्र कीट निवारक धूप

मुस्ता सिद्धार्थभल्लात-कपिकच्छफलं गुडम् ।
चूर्णं भानुफलोपेतं वहेत् सर्जरसैः समम् ।।
मत्कुणा मशकाः सर्पाः मूषका विषकण्टकाः ।
पलायन्ते गृहं त्यक्त्वा यथा युद्धेषु कातराः ।।

मोथा, सरसों, भिलामा, कौचफल, गुड़, आक के फल तथा राल इन सब वस्तुओं को मिलाकर धूप देने से खटमल, मच्छर, सर्प चूहे तथा जहरीले कीड़े उसी प्रकार भाग जाते हैं जसे युद्ध से कायर लोग भाग जाते हैं।

१. कार्तवीर्यार्जुन प्रयोग

बहुत बार देखा गया है कि परिवार में कुछ अनबन अथवा ऊँची-नीची बोलचाल हो जाने से अथवा किसी अन्य कठिनाई के कारण बालक, स्त्री अथवा पुरुष घर छोड़कर बिना कहे चले जाते हैं। ऐसी स्थिति में परिवार में बड़ा कष्ट हो जाता है। उस समय 'आकर्षण-प्रयोग' से गया हुआ व्यक्ति लौट आता है। इस सम्बन्ध में कार्त-वीर्यार्जुन का प्रयोग अति प्रसिद्ध तथा अनेक बार अनुभूत है, जो कि इस प्रकार है—

ग्रहण अथवा शुभ पर्व के दिनों में नीचे लिखे हुए मन्त्र की सौ माला जप करके पुरश्चरण कर ले।

मन्त्र—ॐ क्लीं कार्तवीर्यार्जुनो नाम, राजा बाहुसहस्रवान्।
यस्य स्मरणमात्रेण गतं नष्टं च लभ्यते॥ क्लीं
ॐ कार्तवीर्यार्जुनाय नमः।

फिर जो व्यक्ति गया हो उसका पहना हुआ कुरता अथवा बनियान मँगाकर उस पर यह मन्त्र लिख दे तथा नीचे लिखे कि '**अमुकं शीघ्र-मानयानय स्वाहा।**' अमुक के स्थान पर गये व्यक्ति का नाम लिख दे और उस वस्त्र को चर्खे पर बाँध दे तथा माल निकालकर बच्चे की माता अथवा परिवार का प्रमुख व्यक्ति मन में 'अमुक को जल्दी बुलाओ' ऐसी भावना करते हुए प्रातः और शाम को उल्टा चर्खा चलाये,

तो गया व्यक्ति शीघ्र लौट आता है।

२. धूमावती प्रयोग

मध्याह्न तथा मध्य रात्रि में, गये हुए व्यक्ति की माता अथवा स्त्री केवल एक वस्त्र पहनकर सिर के बाल खोल दे और ऊपर बताई हुई भावना करते हुए मन्त्र लिखे वस्त्र को घर में चक्की से बाँधकर उसके बीच से चाकी निकालकर २१ बार सुबह-शाम उल्टी घुमाये, तो शीघ्र कार्यसिद्धि होती है।

३. अन्य प्रयोग

कृष्णधत्तूर पत्राणां रसे रोचनसंयुतम्।
श्वेतचण्डातलेखन्या भूर्जपत्रे लिखेत्ततः॥
मन्त्रं नाम लिखेन्मध्ये तापयेत् खदिराग्निना।
शतयोजनगो वाऽपि शीघ्रमायाति नान्यथा॥

काले धतूरे के पत्तों के रस में गोरोचन मिलाकर भोजपत्र पर सफेद कनेर की कलम से '**ॐ नमः आदिरूपाय अमुकस्य आकर्षणं कुरु कुरु स्वाहा**' यह मन्त्र गये हुये व्यक्ति के नाम सहित लिखे और उसे खैर की लकड़ी की आग पर तपाये तो चार सौ कोस दूर गया व्यक्ति भी शीघ्र लौट आता है।

आकर्षण-प्रयोग के समय खुली छत पर प्रातः और सायंकाल **बावची** की धूप देने से प्रयोग जल्दी सफल होता है।[1]

———

१. इन्हीं मन्त्र और जन्मविधियों से चोरी में गई हुई वस्तु भी पुनः प्राप्त हो जाती है। अनुभूत प्रयोग है।

१३ | अञ्जन (कज्जल) तन्त्र

विभिन्न प्रकार की औषधियों को जलाकर उसके द्वारा बनाये गये कज्जल (काजल) के प्रयोग भी तन्त्रशास्त्रों में बहुत प्राप्त होते हैं। जिनमें से कुछ प्रयोग यहाँ दिखाये जा रहे हैं—

१. मोहन कर्म के लिये

> **औदम्बरस्य पुष्पेण वर्ति कृत्वा प्रदीपयेत् ।**
> **नवनीतेन संयुक्तं कज्जलं लोकमोहनम् ॥**

गूलर के फूलों को सुखाकर उनकी बत्ती बना ले अथवा रुई की बत्ती बनाकर उसमें सूखे फूलों का चूर्ण लगा दे। फिर मक्खन में उस बत्ती को डुबोकर जलाये। जलती हुई लौ से किसी पात्र में काजल तैयार करे और साथ ही धूपतन्त्र में दिखाये गए वशीकरण मन्त्र का जप करे। इस काजल को लगाने से सभी का मोहन होता है।

२. वशीकरण के लिये

> **विष्णुक्रान्ता बीजतैलं दीपे प्रज्वाल्य यत्नतः ।**
> **दर्शे कार्तिकमासस्य सोमवारेऽर्धरात्रके ॥**
> **कज्जलं पातयेद् होमाच्छुभ्रे हेमशरावके ।**
> **यदञ्जनाच्चक्रवर्ती राजा वशमवाप्नुयात् ॥**

कार्तिक मास की अमावस्या को जब सोमवार हो, उस दिन आधी रात को विष्णुक्रान्ता के बीजों का तेल निकलवाकर उसका दीपक जलाये तथा सोने की साफ कटोरी में काजल निकाले। इस काजल को

'ॐ नमो भास्कराय जगदात्मने (अमुकं) वशमानय कार्यं कुरु कुरु फट् स्वाहा'—इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करके आँजने से राजा भी वश में हो जाते हैं।

विशेष—मन्त्र में 'अमुकं' के स्थान पर जिसके लिये प्रयोग करना हो उसका नाम बोलें तथा 'राजा' पद से बड़े ऑफिसर आदि को प्रसन्न करने के लिए भी यह प्रयोग कर सकते हैं।

कटुतुम्बीबीजतैलेन ज्वालयेत् पटवर्तिकाम्।
कज्जलं चाञ्जयेन्नेत्रे मोहयेत् सकलं जगत्॥

३. अन्य प्रयोग

कड़वी तुंबी के बीजों के तैल में (अथवा बीजों को) तैल में भिगो कर कपड़े की बत्ती के साथ जलाये और उससे काजल बनाकर नेत्रों पर लगाने से सभी वश में हो जाते हैं।

इस प्रयोग के लिये नीचे लिखे किसी एक मन्त्र के दस हजार जप करने आवश्यक हैं।

(१) **ॐ नमो भगवते रुद्राय सर्वजगन्मोहनं कुरु कुरु स्वाहा।**

(२) **ॐ नमो भगवते कामदेवाय, यस्य यस्य दृश्यो भवामि, यश्च यश्च मम मुखं पश्यति तं तं मोहयतु स्वाहा।**[1]

---

१. पिण्डी और लगर की जड़ को गोरोचन के साथ ताम्बे के पात्र में रगड़ कर आंख में आँजने से आँख का फूला मिट जाता है।
इमली के वीज २, बहेड़ा के बीज २ तथा हरड़े के बीज २, इनको पीसकर गोली बना लें और उसको आँख में अंजन करे, तो आँख की ज्योति बढ़े।

दीपक के माध्यम से तन्त्र-साधना के बहुत से प्रकार हैं, उनमें से यहाँ दो प्रयोग दिये जा रहे हैं।

(१) बटुक भैरव दीपदान विधि

दीपदान कर्म के आरम्भ दिन से पूर्व वाले दिन सभी सामग्री जुटाकर आचार्यादि को निमन्त्रित करे तथा आचार्य एवं यजमान एक बार ही भोजन करें। दूसरे दिन प्रातः नित्य क्रिया से निवृत्त हो शुद्ध आसन पर बैठकर गणपति-पूजन से आचार्यादि वरण तक कर्म करे। तदनन्तर बटुक-मरणपूर्वक नीचे लिखे अनुसार संकल्प करे—

अद्य···मम (यजमानस्य वा) सकलमनोरथसिद्धये प्रयोगानुसारेण अमुकदिनपर्यन्तं, अमुकसंख्यामानेन पात्रेण घृतेन तैलेन वा, अमुकसंख्याभिर्वर्तिकाभिर्दीपदानमहं करिष्ये।

दीपवेदी-विचार

जहाँ दीपक की स्थापना करनी हो उस स्थान को शुद्ध कर सवा हाथ की समचोरस चार अंगुल की ऊँचाई वाली दीपवेदी बनाये तथा उस पर कपिला गाय के गोबर से लीपकर लाल चन्दन से पद्धति में बताये अनुसार पूजायन्त्र बनाये। फिर दीपवेदिका के आगे कलश की स्थापना करने के लिए चावल का अष्टदल कमल बनाकर उस पर कलश की स्थापना करे। तदनन्तर दीपक की स्थापना कर उसमें तैल और बत्तियाँ स्थापित करे।

आज्ञा-प्राप्ति प्रार्थना—

तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय कोटिसूर्यसमप्रभ।
भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि॥

इस पद्य को बोलकर श्रीभैरव को प्रणाम कर दीपदान की आज्ञा प्राप्त करे।

विघ्ननिवारण के लिए अन्य दीपदान—

इसके पश्चात् दीपविघ्न निवारण के लिए आगे बताए अनुसार क्रमशः गणपति, दुर्गा, कार्तिकेय और क्षेत्रपाल की वैदिक मन्त्रों द्वारा आवाहन से पुष्पांजलि तक पूजा कर बलि प्रदान करे।

श्री गणेश बलि—

ॐ गणानां त्वा गणपतिं हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे। निधीनां त्वा निधिपतिं हवामहे वसो मम। आहमजा निगर्भधमा त्वमजासिगर्भधम्।

ॐ विघ्नेशायामुं सदीप माष भक्त बलिं समर्पयामि।

ऐसा कहकर गणपति के सामने दीपक, माष और चावल सहित बलि चढ़ाएँ। फिर प्रार्थना करें—**भो विघ्नेश! अमुं सदीप-माष-भक्त बलिं गृहाण। मया क्रियमाणे दीपकर्मणि च वर्तमान वर्तिष्यमाण विघ्ननिवारको भव। श्री विघ्नेशाय नमः।**

श्री दुर्गा-बलि—

ॐ जातवेदसे सुनवाम सोमरमाती यतो निदहाति वेदः। स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वानावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः॥

ॐ दुर्गाभगवत्यै अमुं सदीप-माष-भक्त-बलिं समर्पयामि॥

ऐसा कहकर पूर्ववत् दुर्गा के सामने बलि चढ़ाए। फिर प्रार्थना करे—**हे दुर्गाभगवति! अमुं सदीपमाषभक्त-बलिं गृहाण मया क्रियमाणे दीपकर्मणि च वर्तमान वर्तिष्यमाणविघ्ननिवारिका भव। श्री दुर्गाभगवत्यै नमः।**

श्री कार्तिकेय-बलि—

ॐ कुमारमाता युवतिः समृद्ध गुहा बिभर्ति न ददाति पित्रे।

अनीकमस्य न पिनज्जनासः पुरः पश्यति निहितमरतौ ।।

ॐ कार्तिकेयायामुं सदीप-माष-भक्त-बलिं समर्पयामि।

ऐसा कहकर पूर्ववत् बलि चढ़ाए। फिर प्रार्थना करे—भो कार्तिकेय! अमुं सदीप-माष-भक्त-बलिं गहाण। मया क्रियामाणे दीपकर्मणि च वर्तमानर्वातिष्यमाण विघ्ननिवारको भव। श्री कार्तिकेयाय नमः।

श्री क्षेत्रपालबलि—

ॐ क्षेत्रस्य पतिना वयं हि ते नेव जयामसि।
गामश्वं पोषयित्वा स नो मृडातीदृशे ।।

ॐ क्षेत्रपालायामुं सदीप-माष-भक्त-बलिं समर्पयामि।

ऐसा कहकर पूर्ववत् बलि अर्पित करे; फिर प्रार्थना करे—भो क्षेत्रपाल! अमुं सदीप-माष-भक्त-बलिं गृहाण। मया क्रियामाणे दीपकर्मणि च वर्तमान-वर्तिष्यमाण-विघ्ननिवारको भव। श्री क्षेत्रपालाय नमः।

ॐ श्री भैरव के लिए दीपदान-मालामन्त्र—

दीपदान से पूर्व नीचे बताए अनुसार विनियोग तथा न्यास करे—

ॐ अस्य श्रीबटुकभैरव-दीपदान-माला-मन्त्रस्य मन्मथ ऋषिः-पङ्क्तश्छन्द आपदुद्धारकबटुकभैरवो देवता बं बीजं ह्रीँ शक्तिः मम सर्वमनोरथसिद्धये दीपदाने विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास—

मन्मथऋषये नमः (शिरसि)।
पंङ्क्तच्छन्दसे नमः (मुखे)।
आपदुद्धारकबटुकभैरवदेवतायै नमः (हृदये)।
बं बीजाय नः (पादयोः)।
ह्रीँ शक्तये नमः (पादयोः)।

ॐ कीलकाय नमः (नाभौ)।
विनियोगाय नः (सर्वांगे)।

इसके पश्चात् करन्यास, अंगन्यास तथा मूलमन्त्र द्वारा न्यास करे तथा कार्य के अनुसार घ्यान करे।

तदनन्तर पूर्वोक्त दीपवेदी पर लिखित यन्त्र एवं दीप की पूजा कर वेदी की आठों दिशाओं में खैर की लकड़ी के बने हुए कीले गाड़कर पूजा करे। आठों दिशाओं की पूजा विधि इस प्रकार है—

पहले आठों कीलों पर या उनके पास पूर्व दिशा से आरम्भ कर क्रम से माष, चने और दही में सिन्दूर डालकर थोड़ा-सा वह अंश तथा पकोड़े का नैवेद्य बलि के रूप में अर्पित करे। फिर वहाँ दीपक जलाकर रखे और लाल चन्दन से मिले हुए अक्षत एवं करवीर के पुष्पों से **'अस्त्राय फट्'** बोलते हुए गन्धादि द्वारा नीचे लिखे अनुसार पूजन करे।

(१) पूर्व दिशा में—

(जयन्त की पूजा करके) ॐ ह्रीं जयन्तभैरव! एहि एहि। **इमं सदीपमाषान्नभक्तबलिं गृह्ण गृह्ण मां रक्ष रक्ष अभीष्टं कुरु कुरु स्वाहा।।**

ॐ ह्रीं जयन्तभैरवाय नमः।।

(२) आग्नेय कोण में—

(अघोर की पूजा करके) ॐ ह्रीं अघोरभैरव! एहि एहि। इमं **सदीपमाषान्नभक्तबलिं गृह्ण गृह्ण मां रक्ष रक्ष अभीष्ट कुरु कुरु स्वाहा।। ॐ ह्रीं अघोरभैरवाय नमः।।**

(३) नैऋर्त्य कोण में—

(असितांग की पूजा करके) ॐ ह्रीं असिताङ्गभैरव! एहि एहि इमं **सदीप-माषान्न-भक्तबलिं गृह्ण गृह्ण मां रक्ष रक्ष, अभीष्टं कुरु कुरु स्वाहा।। ॐ ह्रीं असिताङ्गभैरववाय नमः।**

(४) पश्चिम दिशा में—

(भीषण की पूजा करके) ॐ ह्रीं भीषण-भैरव ! एहि एहि। इमं सदीपमाषान्न-भक्त-बलिं गृह्ण गृह्ण मां रक्ष रक्ष, अभीष्टं कुरु कुरु स्वाहा ॥ ॐ ह्रीं भीषणभैरवाय नमः ॥

(५) वायव्य कोण में—

(प्रचण्ड की पूजा करके) ॐ ह्रीं प्रचण्ड भैरव ! एहि एहि। इमं सदीपमाषान्न-भक्त-बलिं गृह्ण गृह्ण मां रक्ष रक्ष मां अभीष्टं कुरु कुरु स्वाहा ॥ ॐ ह्रीं प्रचण्ड-भैरवाय नमः ॥

(६) उत्तर दिशा में—

(कराल की पूजा करके) ॐ ह्रीं करालभैरव ! एहि एहि इमं सदीपमाषान्न-भक्त-बलिं गृह्ण गृह्ण मां रक्ष रक्ष, अभीष्टं कुरु कुरु स्वाहा ॥ ॐ ह्रीं करालभैरवाय नमः ॥

(७) ईशान कोण में—

(कपाल की पूजा करके) ॐ ह्रीं कपाल भैरव ! एहि एहि। इमं सदीपमाषान्न-भक्त-बलिं गृह्ण गृह्ण मां रक्ष रक्ष, अभीष्टं कुरु कुरु स्वाहा। ॐ ह्रीं करालभैरवाय नमः ॥

(८) दक्षिण दिशा में—

(श्री चामीकर की पूजा करके) ॐ ह्रीं श्रीचामीकरभैरव एहि एहि। इमं सदीप-माषान्न-भक्त-बलिं गृह्ण गृह्ण मां रक्ष रक्ष अभीष्टं कुरु कुरु स्वाहा। ॐ ह्रीं श्रीचामीकरभैरवाय नमः।

इस प्रकार दीपक सहित बलि समर्पण करके—"गुरुभ्यो नमः। परमगुरुभ्यः नमः परात्परगुरुभ्यो नमः। परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः। ग्लौं-गणपतये नमः। क्षौं क्षेत्रपालाय नमः।" इस प्रकार बोलते हुए नमस्कार करे।

(दीप पात्र में गायत्री मन्त्र से गोघृत अथवा तैल भरकर वर्तिका

रखकर जितनी बत्तियाँ हों उतनी ही मन्त्र की आवृत्ति करे। फिर मूलमन्त्र बोलकर दीपक के अनुरूप शलाका रखे और दक्षिण की ओर धार वाली छुरी पास में रखकर अथवा गाड़कर "ॐ ह्रीं छ्रीं छुरिके मम शत्रुच्छेदिन रिपून निर्द्दलय निर्द्दलय मां पाहि पाहि स्वाहा" इसी प्रकार मन्त्र से छुरी की पूजा करे। "ॐ ह्रां ह्रीं सर्वांगसुन्दर्यै शलाकायै नमः" इस मन्त्र से शलाका की पूजा करके मूलमन्त्र अथवा गायत्री मन्त्र से दीपक प्रज्वलित करे। तदनन्तर प्राण-प्रतिष्ठा मन्त्र 'ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं हों ॐ क्षं सं हं सः ह्रीं ॐ आँ ह्रीं क्रों प्राणा इह प्राणाः ॐ आँ ह्री कों यं रं लं वं शं षं सं हों ॐ क्षं सहं सः ह्रीं ॐ आँ ह्रीं क्रों जीव इह स्थितः ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हों ॐ क्षं सं हं सः ह्रीं ॐ आं ह्रीं क्रों अस्य सर्वेन्द्रियाणि वाङ् मनस्त्वक् चक्षुः श्रोत्र-जिह्वाघ्राणपाणिपादयूपस्थानि इहैवागत्यसुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा" से दीपक में अंगसहित देव की प्राण प्रतिष्ठा करके (भैरव की पूजनविधि में बताए अनुसार) पद्धति से आवाहनादि बिल्वपत्रसमर्पणान्त पूजा करे।

दीपपूजनमन्त्र—

ॐ ह्रीं ऐं श्रीं क्लीं ऐं ह्रीं श्रीं सर्वज्ञाय प्रचण्ड पराक्रमाय बटुकाय इमं दीपं गृहाण सर्वकार्याणि साधय साधय, दुष्टान् नाशय नाशय त्रासय त्रासय सर्वतो मम रक्षां कुरु कुरु हुं फट् स्वाहा।

इस मन्त्र से अक्षत, चन्दन और पुष्प सहित जल दीपक के समक्ष छोड़े और प्रार्थना करे—

गृहाण दीपं देवेश! बटुकेश महाप्रभो।
ममाभीष्टं कुरु क्षिप्रमापद्भ्यो मां समुद्धर॥

मूलमन्त्र बोलकर 'बटुकाय इमं दीपं निवेदयामि नमः" ऐसा कहते हुए जल छोड़े।

"भो बटुक ! मम सम्मुखो भव, मम कार्यं कुरु-कुरु इच्छितं देहि-देहि मम सर्व विघ्नान् नाशय नाशय स्वाहा" इस मन्त्र से प्रणाम करे।

भैरवदण्ड पूजा—

दीपपात्र के दाहिने भाग में चार अंगुल ऊपर के स्थान पर एक-एक हाथ लम्बा दण्ड नीचे लिखा मन्त्र पढ़कर पूजन करके स्थापित करें।

ॐ ह्रीं भैरवदण्डाय नमः।"

प्रार्थना

येन दण्डेन भो नाथ ! कम्पते भुवनत्रयम्।
तं गृहीत्वाऽथ भो स्वामिन् ! शीघ्रं कार्यं कुरुष्व मे ।।

इतना कहकर पुष्पांजलि अर्पित करे।

इसके पश्चात् संकल्पानुसार दीप जलाता रहे और यथाशक्ति जप करे। इस कर्म के निमित्त स्तोत्रपाठादि भी करे।

दीपविसर्जन—

श्रीभैरव ! नमस्तुभ्यं सत्वरं कार्यसाधक।
उत्सर्जयामि ते दीपं त्रायस्व भवसागरात् ।।
मन्त्रेणाक्षर-हीनेन पुष्पेण विकलेन वा।
पूजितोऽसि मया देव ! तत्क्षमस्व मम प्रभो ।।

इस प्रकार क्षमा प्रार्थना करके दण्डवत् प्रणाम कर आसन के नीचे की ओर मृत्तिका पर जल छिड़ककर उससे ललाट पर तिलक करे और फिर यथेच्छ जप-दान करे।

(२) श्री दुर्गा दीपतन्त्र

'दुर्गा-सप्तशती' देवी उपासना का अपूर्व ग्रन्थ है तथा लाखों साधकों की साधना का द्वार है। तान्त्रिक दृष्टि से इसके अनेक प्रयोग होते हैं। दीप-दान द्वारा भगवती दुर्गा जी की कृपा प्राप्त करने का एक विधान 'चिदम्बर-रहस्य' के आधार पर यहाँ दिया जा रहा है।

दीपदान सम्बन्धी कर्तव्य—साधक को चाहिए कि प्रातःकाल में

नित्यक्रिया से निवृत्त होकर कदलीस्तम्भ, तोरण, पताका आदि से अलंकृत मण्डप में गौमय से लिपे हुए शुद्ध आँगन में अपना आसन बिछाकर पूर्वाभिमुख हो आचमन, प्राणयामादि करके पवित्र मिट्टी से एक हाथ चोकोर चार अंगुल ऊँची वेदी बनाकर उस पर रंगवल्ली करके पहले एक दीपक, बाद में तीन दीपक तथा तीसरी पंक्ति में नौ दीपक (स्वर्ण, रजत, ताम्र अथवा मृत्तिका के पात्र के बने हुए) रख कर उनमें गोघृत अथवा उग्रकर्म के लिये तैल भर दे। फिर उनमें लाल रंग की बत्तियाँ रखे और प्रथम पंक्ति के क्रम से नवार्णमन्त्र का स्मरण करते हुए ज्योति प्रकट करे। तदनन्तर उन दीपकों में प्रथम अध्याय से तेरहवें अध्याय तक के देवताओं का आवाहन कर 'ॐ ह्रीँ रक्तचामुण्डायै तुरु तुरु (अमुकं कार्यं) कुरु कुरु स्वाहा' इस मन्त्र द्वारा आवाहित देवताओं की विधिपूर्वक पूजा करे। पूजा के बाद निम्नलिखित मन्त्रों से पुष्पांजलि अर्पित करे—

(१) विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणम्।
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभोः॥

(२) स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रयात् तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता।
करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः।

(३) या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः

(४) करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः।

(५) सर्वाबाधाप्रसमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद् वैरिविनाशम्॥

(६) सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तुते॥

(७) सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तुते॥

(८) शरणागत-दीनार्त-परित्राण परायण।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि ! नमोऽस्तुते ।।

(९) सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि ! दुर्गे देवि नमोऽस्तुते ।।

इसके पश्चात् आदि अन्त में नवार्णमन्त्र का जप तथा प्रत्येक अध्याय के पश्चात् पुष्पाञ्जलि अर्पण करते हुए, धूप, दीप, नैवेद्य, पायसान्न, आचमन, ताम्बूल अर्पित करके द्वितीय अध्याय का पाठ करे। इसी क्रम से १३ अध्यायों का पाठ पृथक्-पृथक् दीप-पूजनपूर्वक करे और अन्त में सामूहिक पूजा करे तथा ब्राह्मण और सुवासिनी-पूजा करे। कृपा-प्राप्ति के लिये प्रातः पाठ तथा विशेष काम्यकर्म के लिए सायंकाल को पाठ करना चाहिए।

यह अनुष्ठान महान् कर्म की सिद्धि के लिये ४९ दिन, मध्यम कार्य के लिए २४ दिन तथा सामान्य कार्य के लिये १२ दिन का होता है। ऐसा करने से सभी प्रकार के मनोरथ पूर्ण होते हैं तथा जिस कार्य की सिद्धि के लिये प्रयोग किया जाता है वह अवश्य ही पूर्ण होता है।

अन्य दीप प्रयोग—

(३) कार्तवीर्यार्जुन को दीप चढ़ाकर पूजन करने से आकर्षण-कर्म शीघ्र सिद्ध होता है। मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ कार्तवीर्यार्जुनो नाम राजा बाहुसहस्रवान्।
यस्य स्मरणमात्रेण गतं नष्टं च लभ्यते।।

अन्य विधि ऊपर लिखे अनुसार है।

(४) हनुमान जी को दीप चढ़ाकर पूजा करने से युद्ध में विजय तथा शत्रुओं का नाश होता है। इसी विधि से ग्रहों की शान्ति के लिए भी दीपदान करने का विधान है। सभी के मन्त्र 'मन्त्रशक्ति' ग्रन्थ में देखें।

१५ नखदर्पण (हाजरात) तन्त्र

हम देखते हैं कि जब कभी किसी वस्तु की चोरी हो जाती है या बीमारी आदि का कुछ पता नहीं चलता है, तो कुछ तान्त्रिक प्रयोग किये कराये जाते हैं। इनमें हाजरात के प्रयोग अधिक प्रचलित हैं। ये प्रयोग प्रायः मुसलमानी मन्त्रों से करते हैं और यह समझते हैं कि ऐसे प्रयोग हमारे यहां नहीं होते; किन्तु ऐसा नहीं है। हमारे यहाँ तन्त्रों में लिखा है कि—

अंगुष्ठे सलिले खड्गे दीपे चादर्शके तथा।
प्रश्नज्ञानाय क्रियते प्रयोगो दर्पणभिधः॥

अर्थात् अंगूठे के नख पर, पानी में, तलवार में, दीपक की लौ में तथा दर्पण में प्रश्नज्ञान के लिए हाजरात के प्रयोग किये जाते हैं। इस की संक्षिप्त विधि इस प्रकार है—

जिसका जन्म पैरों की ओर से हुआ हो अथवा जो जुड़वाँ (भाई-बहन अथवा दो बहनों का एक साथ) पैदा हुआ हो ऐसी आठ वर्ष की कुँवारी कन्या को स्नान कराकर शुद्ध वस्त्र पहनाकर बाद में उस के दोनों हाथों के अंगूठे के नखों पर यह प्रयोग करे। नखों पर लगाने के लिए जहाँ तक सम्भव हो, माल कांगनी का तैल अथवा कोई अन्य सुगन्धित तैल लगाकर उसे '**ॐ जं नमः**' इस मन्त्र को २० बार जप कर अभिमन्त्रित करे। फिर दूर्वा को भी इसी मन्त्र से अभिमन्त्रित करके दूर्वा से नखों पर तैल लगाये फिर आगे लिखे मन्त्रों का २० बार जप करे—

(१) ॐ चामुण्डे आसुखि धुम्र्मु ष्टिवज्त्रपाने स्वाहा।

(२) ॐ क्ष्रौं ह्रीँ श्रीँ ईं विं शिं शं शं स्वाहा।

(३) ॐ आगच्छ स्वाहा।

(४) ॐ सोघट्टाय स्वाहा।

इस प्रकार जप करके कन्या को नखों में ध्यानपूर्वक देखने के लिए कहे। जब तक उसे चोर अथवा इच्छित व्यक्ति, वस्तु आदि नहीं दिखाई दें तब तक ऊपर लिखे मन्त्रों का कन्या के सिर पर हाथ रख कर अथवा फूँक मारते हुए जप करता रहे। और काँसे के पात्र की आवाज करे। ऐसा करने पर नखों में इच्छित वस्तु दिखाई देगी।

अन्य तन्त्रों में **घटावतार**, **खड्गावतार**, **दीपावतार**, **दर्पणावतार** तथा अन्य प्रयोग भी बताये गये हैं। इनमें घड़े में पानी भरकर उसमें सिन्दूर डालकर इष्टमन्त्र से अभिमन्त्रित कर अभीष्ट प्रश्न का उत्तर प्राप्त किया जाता है, उसे घटावतार कहते हैं। खड्ग-तलवार में, दीपक की लौ में, (आदर्श) में जो प्रयोग होते हैं वे उपर्यक्त अन्य अवतार के प्रयोग कहलाते हैं।

'**अञ्जन कल्प**'-ग्रन्थों में कुछ विशिष्ट प्रकारों से अञ्जन अथवा काजल बनाकर आँख में लगाने से जो दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है उसे **अञ्जनावतार** और **कज्जलावतार** का नाम दिया जाता है। इन प्रयोगों के द्वारा जमीन में गड़े हुए धन को जानने के प्रयोग भी किये जाते हैं। वैसे तन्त्रशास्त्रों में 'भूगर्भ निधि-परीक्षण' के स्वतन्त्र प्रयोग भी दिये गये हैं।

मुस्लिम मन्त्र द्वारा हाजरात

किसी सुबुद्ध किन्तु पवित्र (प्राय: आठ-नौ वर्ष की आयुवाले बालक के दाहिने हाथ के अंगूठे पर शुद्ध घी के दीपक से निकाला हुआ काजल लगा दे और उस लड़के को नाखून में देखने के लिए कहे। सबसे पहले किसी का मुख दिखेगा। जब मुख दिखने लगे, तो मन्त्र बोलकर कहे

कि मुँह दिखना बन्द हो जाए और चौगान दिखाई दे।' ऐसा कहने से उसे चौगान दिखाई देगा। फिर इसी पद्धति से 'दो आदमी बुलाए' वे आ जाएँ तब दो-दो करके तीन बार और बुलाये जो कुल आठ आदमी हो जाएंगे। फिर उनसे कहे कि झाड़ू देनेवाले को बुलाओ' उसके आने पर सफाई करायें तब भिश्ती को बुलाकर फर्श पर पानी छिड़कवाये, फर्श वाले से फर्श मँगवाये, बिछवाये और दो कुरसी तथा तख्त मँगवाकर उस पर गद्दी बिछवाये। फिर कहे कि—पीरान पीर साहब से जाकर अर्ज करो कि आपका (कराने वाले का नाम लेकर) बन्दा आपको याद कर रहा है, तो मुन्शी साहब को साथ लेकर पधारें, जब पीरान पीर साहब और मुन्शी साहब आकर बैठ जायें, तो मुन्शी साहब से अर्ज करें कि (अमुक व्यक्ति आपका बन्दा) आपसे काम पूछता है। यह आप पीरान पीर साहब से अर्ज करें और अपना प्रश्न कहें। ऐसा कहने पर लड़के को उत्तर मिलेगा। यदि लड़का ठीक से नहीं समझे, तो पुनः अर्ज करें कि हमारी भाषा में लिखकर समझाओ या दिखा दो। मुन्शी साहब वैसा ही करेंगे। जब कार्य पूरा हो जाए, तो पीरान पीर साहब से मुन्शी जी द्वारा जाने की अर्ज कराये तथा तकलीफ के लिए माफी माँग ले। इसके बाद अंगूठे की स्याही या काजल मिटा दे।

मन्त्र और साधनविधि

हाजरात का मन्त्र इस प्रकार है—

'ख्वाजा खिज्र जिन्द पीर मादर दस्तगीर मदत मेरा पीरान पीर करो घोड़े पर भीर चढ़ो हाजर सो हाजर।'

इस मन्त्र को शुक्रवार की रात्रि में साधक नीली मणियों की माला को उलटी फिराते हुए अर्थात् मनकों को सामने की ओर चला कर १०८ बार मन्त्र का जप करे। जप के समय लौंग, इलायची तथा लोबान की धूप जलाये। इसी प्रकार प्रयोग के समय भी धूप जलाना आवश्यक है।

१६ भूगर्भ-निधि-ज्ञानतन्त्र

पृथ्वी का एक नाम 'वसुन्धरा' भी है। वसु का अर्थ है 'धन' और धरा का अर्थ है 'धारण करने वाली'। अतः पृथ्वी में बहुत स्थानों पर धन गड़ा हुआ है। पूर्वाचार्यों ने ऐसे गड़े हुए धन को प्राप्त करने के लिये भगवान शंकर से प्रार्थना की थी और उनकी कृपा से ही इस विषय का प्रकाश भगवान शंकर ने दिया।

हम देखते हैं कि कई लोगों को स्वप्न में यह सूचना मिल जाती है कि 'अमुक स्तान पर धन है' और वे उसे प्राप्त करने के लिए प्रयत्न आरम्भ कर देते हैं; किन्तु उसके निकालने की विधि का पूरा ज्ञान न होने से वे संकट में पड़ जाते हैं। धन तो दूर रहा, अपना स्वयं का बहुत-सा नुकसान कर बैठते हैं और कभी-कभी तो प्राणों से भी हाथ धोने पड़ते हैं। इसलिए जिन सज्जनों को ऐसा आभास हो वे इस विधि से लाभ उठाएँ।

धनस्थान-विचार—धनस्थान जानने की इच्छा वाले व्यक्ति को चाहिए कि वह पहले अपने उत्तम शकुन, उत्तम तिथि, नक्षत्र, वार, योग आदि देखकर यह कार्य आरम्भ करे। पृथ्वी, जल और आकाश इन तीनों स्थानों में धन के भण्डार हैं। वृक्ष, लता, गौ, मृग, कीड़े एवं अन्य जन्तुओं के द्वारा धनस्थान का ज्ञान होता है। जहाँ धन का भण्डार होता है वहाँ कुछ दैवी तत्त्व विद्यमान रहते हैं जिनमें सर्प, भूत, प्रेत

आदि भी होते हैं। पुष्प, काँटे अथवा विशेष प्रकार की झाड़ियों से भी धनस्थान का ज्ञान होता है। इस ज्ञान के लिए कुछ अंजन-प्रयोग, धन खोदने और निकालने की विधि तथा आनेवाले विघ्नों को दूर करने के उपाय समझकर ही यह कार्य करना चाहिए।

सहायक—इस कार्य में सहायता करने वाले व्यक्ति प्रामाणिक, और धार्मिक सात, पाँच अथवा तीन होने चाहिएं। सहायक तथा मन्त्रज्ञ की सहायता के बिना यह कार्य न करें। जो व्यक्ति सहायक हों वे दयालु, अहिंसक, निरभिमान, बलवान्, ईर्ष्या न करने वाले, पवित्र, सत्यवादी, आस्तिक तथा उत्तम स्वभाव वाले हों।

शकुन—इस कार्य को आरम्भ करने के लिए जाते समय मार्ग में बछड़े सहित गौ, मदिरा, माँस, गोरोचन, दही, चन्दन, जलती हुई धूएँ से रहित अग्नि, सौभाग्यवती स्त्री, श्वेत वस्त्र, श्वेत पुष्प, दूध, घृत, कुंआरा बालक, गोमय, हाथी, घोड़ा, ध्वज, चँवर, बंसी-नगाड़े के शब्द, मोर की आवाज तथा पानी का घड़ा भरकर लाती हुई स्त्री उत्तम शकुन माने गए हैं।

अपशकुन—सिरमुंड्या हुआ संन्यासी, नंगा मनुष्य, हीन जाति का व्यक्ति, खरगोश, कौआ, सर्प, रोगी, दुखी आदि यदि रास्ते में सामने आएँ, तो उसे अपशकुन माना है।

दिनशुद्धि—आर्द्रा, पुष्य, पुनर्वसु, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तरा भाद्रपद, अनुराधा, ज्येष्ठा, श्रवण, पूर्वा भाद्रपद, अश्विनी, रेवती और रोहिणी ये नक्षत्र, मंगल, सूर्य तथा शनि को छोड़कर अन्य वार, व्यतिपात, वैधृत और क्षयतिथि के अतिरिक्त उत्तम तिथियाँ, आषाढ़ से कार्तिक तथा चातुर्मास का त्याग करके शेष महीनों में यह कार्य करना चाहिए।

धनस्थान—नदी, तालाब, कुआँ, बावड़ी और समुद्र में धन रहता है। यह जलस्थानगत धन कहलाता है।

विष्णु, शिव, देवी अथवा अन्य देवस्थान, गाँव का मध्य भाग, गांव की सीमा, ब्राह्मण तथा राजा ठाकुर का घर, धनाढ्य लोगों के

मकान में, गाँव के चौराहे पर, मकान के पिछले भाग में, पशु बाँधने के स्थान में, पुराने विशाल वृक्ष के मूल में, श्मशान में धान की कोठी में, ऊजड़ मकान में तथा किले के कोने में धन रहता है। यह भूस्थान-गत धन कहलाता है।

पर्वत के शिखर आदि, गुफा, गाँव के दरवाजे, मन्दिर के शिखर आदि स्थानों में धन रहने पर वह **आकाश-स्थानगत** धन कहलाता है।

स्थान-परिचय—चातुर्मास में प्रायः सर्वत्र मटमैला पानी रहता है किन्तु जहाँ जलस्थान में धन रहता है वहाँ का पानी निर्मल रहता है। जहाँ ठण्ड के दिनों में गरम पानी हो और गरमी में ठण्डा पानी हो वहाँ भी धन होता है। तथा जिस तालाब में कमल लगे हों और उनमें जो कमल धुएँ के समान दिखाई देता हो वहाँ अवश्य धन रहता है।

पृथ्वी पर जहाँ धूएँ जैसा दिखाई दे, छोटे-मोटे पौधे होते हुए भी किसी एक भाग में कोई पौधा न हो वहाँ धन स्थित है ऐसा समझना चाहिए। आस-पास की जमीन के भागों की अपेक्षा जिस जमीन का एक भाग तेजस्वी लगता हो, जिस जमीन पर रात्रि में प्रकाश दिखाई देता हो, जिस जमीन पर घूमते हुए मन में आनन्द-उल्लास का अनुभव हो, जहाँ घी के धुएँ जैसी गन्ध आती हो अथवा वसन्त ऋतु जैसे पुष्पों की गन्ध आती हो, जिस स्थान पर बिना ऋतु के भी वृक्षों में पुष्प निकलते हों, अथवा जिस पौधे पर पुष्प नहीं लगते हों फिर भी पुष्प आते हों, कँटीले वृक्षों में काँटे न हों, प्रकृति से विपरीत किसी नवीन तत्त्व से युक्त प्राकृतिक वस्तु के होने वाले स्थान पर धन की सम्भावना होती है। कहीं पत्थर पर परस्पर विरोधी जाति के प्राणियों के चित्र खुदे हुए होने पर उस पत्थर के नीचे धन होने की सम्भावना है।

अन्तरिक्ष धनस्थान के सम्बन्ध में यह ज्ञातव्य है कि जिस शिखर पर अथवा ऊँचे टीले पर किसी देवता की मूर्ति हो, वहाँ धन होगा तथा उस मूर्ति के अंग पर जहाँ चिह्न होगा वहाँ उसके प्रमाण की गहराई

में द्रव्य गड़ा हुआ है ऐसा समझना चाहिए। यदि दो मूर्तियाँ एक-दूसरे के सामने मुख रखकर खड़ी हो, गणपति की मूर्ति यदि उत्तर की ओर मुख रखकर बिठाई गई हो, मूर्ति का पेट बड़ा हो, ऊपर मुख हो किन्तु दृष्टि नीची हो, चेहरे पर रोने का भाव हो, मातृका की मूर्ति हो, विचित्र आकार बने हुए हों, मूर्ति के हाथ में सात पत्तियों वाला कमल हो, मूर्ति के मस्तक में कीला लगा हुआ हो या आकार बना हुआ हो तथा कोई विचित्र ही स्वरूप अंकित हो, वहाँ द्रव्य गड़ा हुआ है ऐसा समझना चाहिए।

ऐसे अनेक चिह्न, द्रव्यमान, भूमि की गहराई का मान तथा अन्य आवश्यक जानकारी तन्त्र शास्त्रों में प्राप्त होती है जिनका संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया गया है।

निर्णय के लिए तान्त्रिक प्रयोग

जब हमें यह अनुभव हो कि अमुक स्थान पर द्रव्य है, तो उसका निर्णय करने के लिए नीचे लिखे प्रयोगों में से कोई एक प्रयोग करे।

(१) चमेली के फूलों को दही में भिगोकर उस स्थान में ५-६ जगह अलग-अलग उन्हें रखना। दूसरे दिन प्रातः यदि दही का पीला, काला अथवा लाल रंग हो जाए, तो वहाँ अवश्य द्रव्य है ऐसा जानना। अथवा हल्दी दूध मिलाकर छींटना और दूसरे दिन रंग बदला हुआ मिले, तो वहाँ धन है यह जानना।

(२) कई स्थानों पर पत्थर लगा हुआ होता है उस पत्थर को दूर हटाने की अपेक्षा उस पर—गरमाला की जड़, अर्जुन वृक्ष के पत्ते, बरगद की छाल, लोध, मजीठ, कुलथी और तुलसी इन सबको पीस कर चूर्ण बना लें और उसे भैंसे के मूत्र में मिलाकर चुपड़ दें। ऐसा करने से पत्थर टूट जायेगा और धन का लाभ होगा।

द्रव्य दर्शन—बहुधा ऐसा होता है कि अपने प्रारब्धवश धन होते हुए भी दिखाई नहीं देता है। ऐसी स्थिति में—पारद, मधु, कपूर, पीलू के फूल तथा सूरजमुखी के बीजों को समभाग में मिलाकर सर्वांजन

तैयार करें और उसे लगाकर देखें और नीचे लिखे मन्त्र का जप करें—

सत्यं दर्शय भौमेयं दिव्यं सत्येन दर्शय।
यदि भूमिगतं द्रव्यमात्मानं दर्शय स्वयम् ॥

अंजन लगाने का मन्त्र

ॐ ॐ ग ं क्षं अं लोकिनि निधिनि लोकिनि स्वाहा।

भूमि पूजनादि विधान—

ॐ भूँ भूमिं ॐ ॐ रं अग्नये नमः। ॐ धं धनाध्यक्षाय नमः नमोऽस्तु देवदेवाय शूलपाणये अत्रागच्छतु ठं स्वाहा। भूमि का खनन करते समय इस मन्त्र का जप करें—ॐ **नमो भगवते रुद्राय दुदुन्दुभिषः।** स्थान की रक्षा के लिए मन्त्र—ॐ **नमो योगीश्वराय नमो मातृभ्यो नमो विश्वरूपिणीभ्यः प्रतिगृह्णन्तु सिद्धये। इमं बलिं गृह्ण गृह्ण ठं ठं स्वाहा।** बलि देने का मन्त्र—ॐ **नमो रुद्राय योगीश्वराय नमोऽनन्त-वासुकि-तक्षकनागादिभ्यो—नमो नागगणेभ्यो नागगणाः प्रतिगृह्णन्तु सिद्धये इमं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा।**

द्रव्य निकालने की विधि—उत्तम दिन देखकर स्नान एवं प्रातः नित्य क्रिया से निवृत्त होकर विधिपूर्वक पृथ्वी और वराह भगवान् की पूजा करें तथा सर्पादि के उपद्रव से बचने के लिए नीचे लिखे अनुसार **पादलेप लगायें**—आक की जड़, कनेर की जड़ और फनस की जड़ इन सबको समभाग में लेकर चूर्ण बनाएँ तथा पैरों पर लगाएँ। फिर धन-स्थान पर जाकर सात अंगुल के खैर की लकड़ी के आठ कीले दिशाओं में गाड़ दें और '**ॐ नमो भगवते रुद्राय हर हर हंज हंज स्फुटि स्फुटि निरुवे स्वाहा**' इस मन्त्र से चारों ओर से कुछ-कुछ जमीन खोद लें। पानी, गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप दीप और नैवेद्य से कीलों की पूजा करें तथा वहीं बलि के लिए दही, चावल, सरसों आदि चढ़ा दें। बाद में गहराई से खोदने पर धन प्राप्ति होगी।

हिन्दी में पहली बार अद्भुत पुस्तक

हस्त रेखाएँ बोलती हैं (कीरो)

आपका हाथ प्रकृति की खुली पुस्तक है

इसके समझने के लिये कुछ समय अध्ययन में लगाइये। कुछ ही दिनों बाद आप पायेंगे कि आपने एक ऐसा ज्ञान प्राप्त किया है जो एक नया प्रकाश स्तम्भ है। इसके प्रकाश से अपना, अपने मित्रों एवं सम्बंधियों का मार्ग दर्शन कीजिये।

हस्त रेखा विज्ञान पर संसार के सबसे प्रसिद्ध भविष्य-वक्ता की यह सर्वश्रेष्ठ बड़ी पुस्तक मानी जाती है। कीरो हस्त विशेषज्ञ के साथ साथ अंक विद्या एवं ज्योतिष के भी बढ़िया विद्वान् थे। इसीलिये उनकी चमत्कारिक भविष्यवाणियों में हस्त रेखा का असाधारण ज्ञान और व्यवहारिक अनुभव था।

यह ग्रन्थ बृहद रूप में हिन्दी भाषा में पहली बार पाठकों के लाभार्थ प्रकाशित हुआ है। सुविधा के लिए चित्र भी दिये गए हैं। मूल्य ४० रुपये

केरलीय ज्योतिष

प्रस्तुत रचना दक्षिण भारत की तीन प्रसिद्ध पुस्तकों : शुक्राचार्यकृत केरलीय ज्योतिष, केरलसूत्र तथा गोपाल रत्नाकर, का सरल हिन्दीरूपान्तर है। लेखक ने व्यावहारिक कुण्डलियों के उदाहरणों और हमारे विचार शीर्षक से विषय को और अधिक स्पष्ट किया है। (नवीन संस्करण) **मूल्य १५·००**

अनिष्ट ग्रह : कारण और निवारण

विविध उपायों द्वारा जीवन की कठिनाइयों के निराकरण पर विज्ञान-सम्मत विवेचन, सरल भाषा में, श्री जगन्नाथ भसीन द्वारा। **मूल्य १२·००**

(ज्योतिष साहित्य का विशाल भंडार)

पत्र लिखकर मंगायें :

रंजन पब्लिकेशन्स

१६, अंसारी रोड, दरियागंज,

नई दिल्ली-११०००२